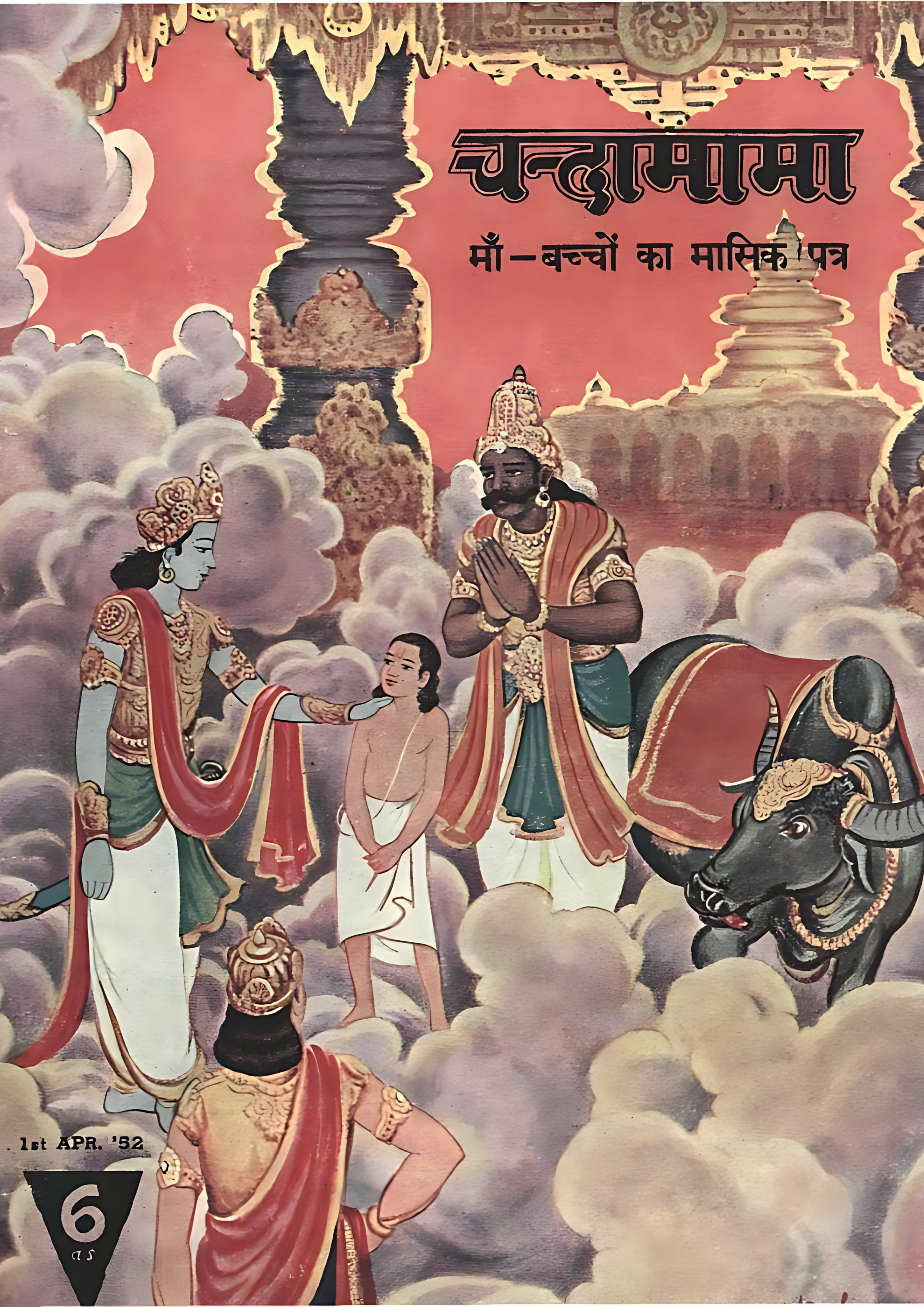
चन्दामामा
माँ–बच्चों का मासिक पत्र
1st APR. '52
6

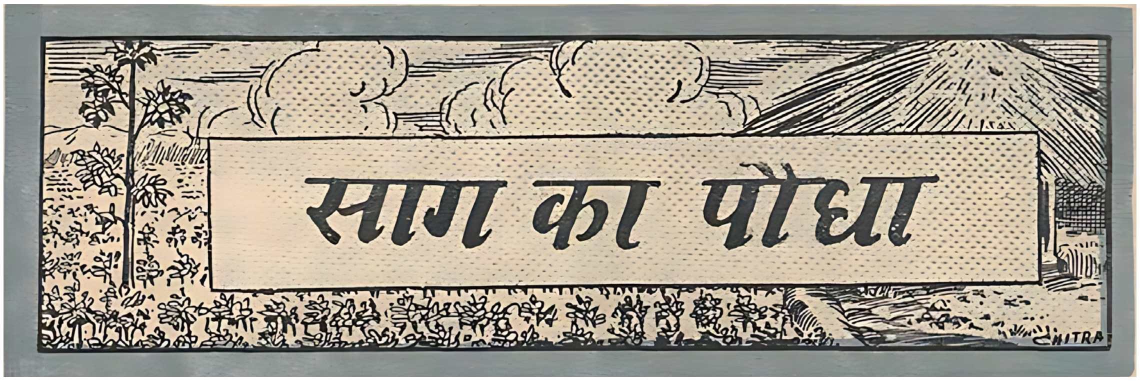

एक समय एक गाँव में भीमदास और श्यामदास नाम के दो भाई रहते थे। होश सम्हालने पर दोनों ने मौरूसी ज़मीन का बँटवारा कर लिया। हर एक को चार-चार एकड़ मिले। भीमदास अपने चार एकड़ में खेती करके रोज़ी चलाने लगा। लेकिन श्यामदास ने अपनी ज़मीन बेच दी। वह उस रुपए से व्यापार करके देखते ही देखते लखपती बन बैठा। लेकिन खेती में तो उतना मुनाफा नहीं हो सकता था। इसलिए भीमदास जैसे का तैसा रह गया।

हाँ तो, एक साल भीमदास ने अपने खेत के एक कोने को अच्छी तरह जोत कर उस में साग के बीज बिखेर दिए। उस साल पानी खूब बरसा। बीज बेकार नहीं गए। भीमदास की बाड़ी हरी-भरी दिखाई देने लगी। अब भीमदास हर रोज़ टोकरी भर साग काट कर ले जाता था और उसे बेच लाता था।

अगर कोई भीमदास से पूछता कि "तुम्हारा भाई क्यों लखपती हो गया और तुम यों कङ्गाल ही रह गए ?" तो वह जवाब देता-"भैया ! सब अपनी-अपनी तकदीर का खेल है। उसकी तकदीर अच्छी थी। इसलिए वह लखपती बन गया। मेरी तकदीर खोटी थी; इसलिए मैं साग बेचता रह गया।" यही सोच कर वह अपने मन में भी सन्तोष कर लेता और कभी अपने भाई को देख कर जलता नहीं था। हाँ, भीमदास के साग के पौधों में एक ऐसा पौधा था, जो खूब मोटा हो गया था और देखने में बहुत अच्छा लगता था। भीमदास का मन उसको काटना नहीं चाहता था। इसलिए उसने उसे वैसे ही रहने दिया। आखिर साग का वह पौधा बढ़ता-बढ़ता सुपारी के पेड़ जितना बड़ा हो गया। उस राह से आने-जाने वाले सब लोग उसको देख कर चकित हो जाते

सुन्दरलाल

उसको अचरज हुआ कि एक साग का पौधा इतना ऊँचा कैसे बढ़ गया? उसका मन उस पौधे पर चल गया।

भीमदास जो वहीं खड़ा था, बोला- "हुज़ूर ! यह पौधा मुझ गरीब किसान की बाड़ी में शोभा नहीं देता। यह तो आपके राजोद्यान में रहने लायक है।" यह सुन कर राजा को बहुत खुशी हुई। तब भीम- दास ने उस पौधे को चारों ओर की मिट्टी के साथ उखड़ लिया जिससे जड़ें न टूट जाएँ। फिर उसने उसे राजा के रथ पर चढ़ा कर उनके आज्ञानुसार राजोद्यान में ले जाकर अपने हाथों से लगा दिया। तब राजा ने उसे अशर्फियों की एक थैली पुरस्कार में दी। वह थैली लेकर भीमदास खुशी-खुशी घर लौट आया।

और कहते-"हमने साग के पौधे बहुत से देखे हैं। लेकिन एक भी ऐसा पौधा नहीं देखा जो इतना ऊँचा बढ़ गया हो।" इस तरह जो कोई उसे देखता उसकी बड़ाई करता। उनकी बातें सुन कर भीमदास मन ही मन फूला न समाता। इतना ही नहीं, जो साग का पौधा इतना बढ़ गया था, वह तरकारी में अच्छा न लगता। यह हर कोई जानता था। इसलिए भीमदास ने निश्चय कर लिया कि यह पौधा खाने के लिए नहीं, सिर्फ़ दिखाने के लिए है।

कुछ दिन बाद उस देश का राजा अपने दरबारियों के साथ उस राह से कहीं जा रहा था। उसकी नज़र साग के पौधे पर पड़ गई। देखते ही

इस तरह उस साग के पौधे के कारण भीम-दास की तकदीर ही पलट गई। उसकी गरीबी दूर हो गई। वह राजा की कृपा से धनवान बन गया और सुख से जीवन बिताने लगा।

इस तरह एक साग के पौधे की वजह से उसे दौलतमन्द बनने देख कर उस गाँव वालों को जलन पैदा हो गई। सबसे ज्यादा तो

उसका भाई श्यामदास ही जलने लगा। अपने भाई के अच्छे दिन देख कर उसे खुश होना चाहिए था। लेकिन उलटे वह दुखी हुआ।

श्यामदास ने यह नहीं सोचा कि अब उसके भाई के दिन सुख से काटेंगे और वह भी उसी की तरह आराम की जिन्दगी बिताएगा। उसे तो ऐसा लगता था जैसे भीमदास की दौलत की वजह से उसी को घाटा हो रहा है। जैसे वह उसी का माल खा रहा है। अब उसे दिन-रात यही धुन लग गई कि किसी तरह वह भी राजा के पास जाए और भाई से भी ज्यादा रुपए कमा लाए। उसके लिए खाना-पीना सोना सब हराम हो गया। वह सोचने लगा कि राजा के पास जाते वक्त क्या भेंट ले जाए ! कौन सी भेंट पाकर राजा ज्यादा खुश होंगे ? आखिर श्यामदास के मन में आया- "राजा ने एक तुच्छ साग के पौधे के लिए उतना धन पुरस्कार में दिया ? फिर कोई कीमती भेंट ले जाने से क्या वे ज्यादा खुश न होंगे और ज्यादा धन इनाम न देंगे ?"

यह सोच कर श्यामदास ने अपनी सारी जायदाद बेच डाली और उस रुपए से सोने की एक बहुत बड़ी

ढाल बनवाई। उस ढाल पर उसने हज़ारों बहुमूल्य हीरे-जवाहर जड़वाए। उस ढाल को वह एक रथ पर चढ़ा कर बड़ी धूम-धाम से किले में ले गया और राजा की भेंट की।

उस ढाल को देख कर राजा को बहुत खुशी हुई। उसने वज़ीर से कहा-"वज़ीर जी ! यह आदमी हमारे लिए इतनी कीमती भेंट लाया है। हमें इसे कोई बहुत ही दुर्लभ वस्तु पुरस्कार में देनी चाहिए। अब आप ही सोच कर बताइए कि वैसी कौन सी वस्तु हम इसे दे सकते हैं?"

वज़ीर ने जवाब दिया- "हुजूर ! इसमें सोचने की क्या बात है ? हाथी-घोड़ों पर

हीरे-जवाहरात लाद कर इसके घर भिजवा देंगे। बस, वह खुश हो जाएगा।"

लेकिन राजा को उनकी बात जँची नहीं। उसने कहा-"जो आदमी हमें ऐसी कीमती रत्न-जटित ढाल भेंट कर सकता है वह खुद ही बहुत धनवान होगा। उसकी नज़र में मेरे हीरे-जवाहर ठीकरों जैसे लगेंगे। हमारी इज्जत खाक में मिल जाएगी तब तो ! मिठाई खा-खाकर जिसका स्वाद बिगड़ गया हो उसे और मिठाई देने से क्या फ़ायदा ? इसलिए और कोई अपूर्व वस्तु सोच निकालो !" लेकिन उस दिन मन्त्री जी के दिमाग ने कुछ काम नहीं किया। इसलिए कुछ तय न हो सका। रात भर राजा दिमाग लेड़ाता रहा। लेकिन उसे कुछ भी सूझा नहीं। दूसरे दिन वह सबेरे उठ कर अपने उद्यान में टहलने गया। उस समय उसकी नजर भीमदास के दिए हुए साग के पौधे पर पड़ी। तुरन्त राजा के दिमाग में एक बिजली सी चमक गई। उसने सोचा- "इस से अपूर्व वस्तु और क्या हो सकती है ? उस आदमी ने उसे रतन-जड़ी ढाल भेंट की। लेकिन वह उसे ऐसा पुरस्कार देगा जो संसार में किसी ने देखा-सुना तक न हो।

यह सोच कर राजा ने उसी दिन उस पौधे को होशियारी से उखड़वा कर बड़ी धूम-धाम से श्यामदास के घर भिजवाया। श्यामदास जो राह देख रहा था कि हाथी-घोड़ों पर हीरे-जवाहरात लद कर आएँगे, यह देख कर मिट्टी पलीत हो गया। आखिर जब वह सब्र न कर सका तो उस पौधे के पास जाकर कहने लगा-"ऐ मेरी सारी जायदाद खा जाने वाले पौधे ! मैं तुम्हें क्या करूँ ? और कोई पेड़-पौधा होता तो उसे चूल्हे की भेंट करता ! लेकिन तुम तो उस काम भी नहीं आओगे !" यह कह कर वह माथा पीट-पीट कर रोने लगा।

राक्षस के हाथ में जुड़वें भाइयों का फँस नाना और राक्षस के भाई का उनको अपने साथ ले जाना आदि सरोवर में हंस के रूप में तैरती हुई राजकुमारियों ने देख लिया था। उन्होंने और एक बात भी देखी थी जिस पर दोनों रराक्षसों का ध्यान नहीं गया था। राक्षस को आते देख उदय अपनी जेब से सफेद बुकनी की डिबिया निकाल ही रहा था कि राक्षस ने उसे पकड़ लिया। उदय को बुकनी अपने ऊपर छिड़क लेने का मौका नहीं मिला और डिविया ज़मीन पर गिर पड़ी। वे सब उसे वहीं छोड़ कर चले गए।

राक्षस के चले जाने के बाद राजकुमारियों ने सरोवर से बाहर आकर डिबिया की तलाश की। लेकिन वह उन्हें न दिखाई दी। तब उन तीनों को बहुत अचरज हुआ। उन्होंने कहा- "यह तो बड़े अचरज की बात है ! डिबिया यहीं गिर पड़ी थी और यह हमने अपनी आँखों से देख लिया था। फिर वह देखते देखते कहाँ गायब हो गई? वह ज़रूर यहीं कहीं पड़ी होगी। आओ! ढूँढें !"

यह कह कर तीनों बड़े गौर से कदम कदम पर तलाश करती हुई आगे बढ़ीं।

आखिर सरोवर से बहुत दूरी पर एक जगह उन्हें डिबिया दिखाई दी।

तब वे सोचने लगीं कि इस डिबिया को कहाँ छिपाया जाय। अन्त में उन्होंने वहीं सरोवर के किनारे एक गढ़ा खोद कर उसमें डिबिया को छिपा दिया।

अब तीनों माथा-पच्ची करने लगीं कि जुड़वें भाइयों को किस तरह छुड़ाया जाय ? आखिर एक दिन सुकेशिनी ने बहनों से कहा-"मुझे एक तदबीरसूझ गई है। बता दूँ ?"

"हाँ ! हाँ ! बता दो !" सुभाषिणी और सुहासिनी ने एक साथ कहा।

"पहले किसी तरह उस राक्षस को वहाँ से हटा कर यहाँ ले आना होगा। " सुकेशिनी ने कहना शुरू किया। "मैंने इसके लिए भी एक उपाय सोच निकाला है। हम सब उसके पास जाकर कहेंगीं कि आओ, हम तुम्हें अपना नाच दिखाएँ। जाते वक्त हममें से कोई मन्त्र-जल लेती जाएगी और उन राजकुमारों की मूरतों पर छिड़क देगी। तब उनको अपना असली रूप मिल जाएगा। हममें से किसी को राक्षस से छुपा कर यह काम करना होगा। उसके बाद उन भाइयों की राय जान कर जो करना होगा, करेंगीं।" सुकेशिनी ने कहा।

"लेकिन राक्षस क्या इतना बुद्धू है जो हमारे झाँसे में आ जाए ? मान लो कि हम उसे किसी तरह धोखा देकर वहाँ से हटा ले आईं। लेकिन उस महल में राज-कुमार कहाँ हैं, इसका पता लगाना क्या कोई आसान काम है ? हम भी कहीं उसके चंगुल में फँस गईं तो फिर इन राजकुमारों को छुड़ाने की सारी उम्मीद छूट जाएगी। तुम्हारा उपाय सुनने में बहुत अच्छा लगता है। लेकिन आचरण में बहुत कठिन है।" सुभाषिणी ने कहा।

"तुम्हारा कहना तो ठीक है। लेकिन हिम्मत किए बिना कोई काम नहीं हो सकता। जोखिम से डरने से काम कैसे चलेगा ?" सुकेशिनी ने पूछा। तब सुभाषिणी और सुहासिनी ने उसकी बात मान ली।

दूसरे दिन सरोवर में जितने हँस थे सब बाहर आ गए। किनारे आते ही सबको मनुष्य रूप मिल गया। जुड़वाँ बहनों की तरह ही वे सभी राक्षस के चंगुल में फँस कर यहाँ लाए गए थे। उनमें लड़के और लड़कियाँ भी थीं।

लड़कों सबको लौट जाने को कहा सुहासिनी ने। वे सभी लौट गए। अब बचीं सभी लड़कियाँ। वे सब बाग में फूल चुनतीं हुईं, गाती हुईं राक्षस के महल की तरफ आने लगीं।

उनका शोर सुन कर राक्षस खुद बाहर निकल आया। "यह क्या ? कहाँ जा रही हो तुम सब ? कहीं मुझी पर तो धावा नहीं बोल दिया ?" उसने मज़ाक के तौर पर पूछा। तब सुकेशिनी ने जो सबसे आगे थी, कहा-"किस की मजाल है जो तुम पर धावा बोल दे ? हम तो वैसे ही टहलने चली आईं। हाँ, वे तीनों लड़के जो नए पकड़े गए हैं, कहाँ हैं?"

तब राक्षस ने ठठा कर हँसते हुए कहा-"और कहाँ होंगे ? यहीं हैं ! उन्हें देखना चाहती हो ? आओ ! हाँ, उनके बारे में तुम लोगों को इतनी फिक्र क्यों ?" यह कहते हुए उसने उन्हें अन्दर ले जाकर एक एक करके पत्थर की सब मूरतें दिखा दीं।

सब कुछ देख लेने के बाद सुकेशिनी ने कहा-"ठीक है ! लेकिन मेरे मन में एक शङ्का उठती है। हम इतनी लड़कियाँ हिल-मिल कर रहती हैं। फिर भी कभी-कभी हमारा जी ऊब जाता है और हम सोचती हैं कि बलि जल्दी हो जाय और हमें इस यातना से छुटकारा मिल जाय तो

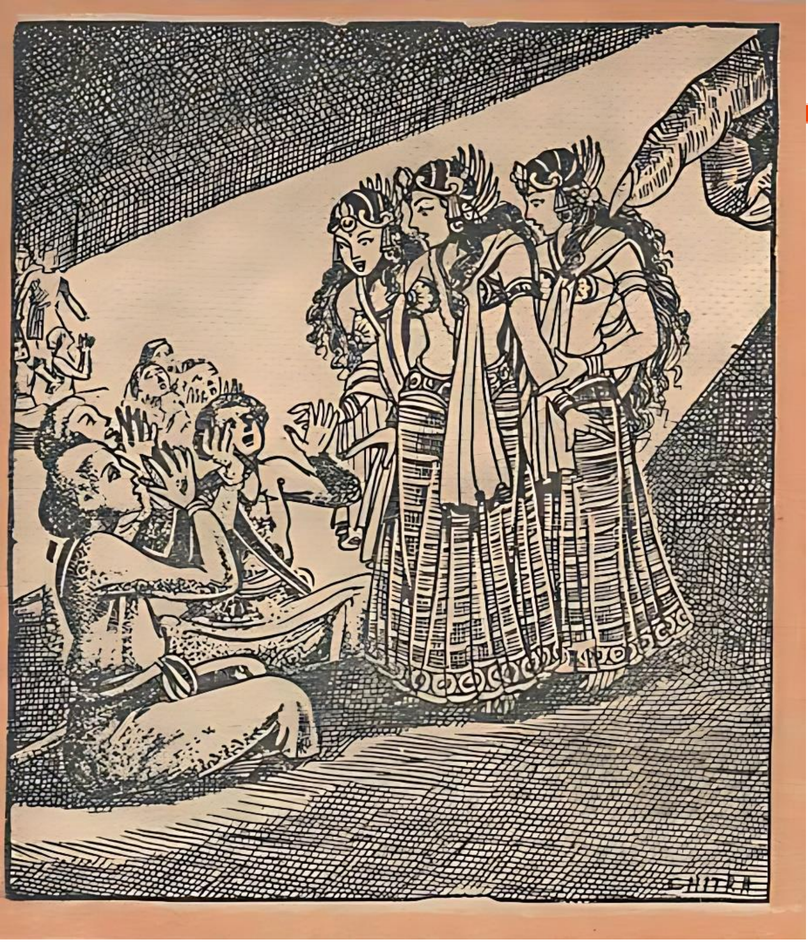

अच्छा हो। फिर तुम इतने दिनों से इन पत्थर की मूरतों के बीच अकेले कैसे पहरा दे रहे हो ? क्या तुम्हारा जी नहीं अब जाता ?" "तुम्हें क्या मालूम कि मेरा जी उचट जाता है कि नहीं ? लेकिन क्या किया जाय ? मैं यह जगह छोड़ दूँ तो तुम लोगों से भी पहले मेरी बलि हो जाय। मेरी तो 'साँप छछूँदर' की सी हालत है।" राक्षस ने अपने मन की व्यथा प्रकट की।

तब सुकेशिनी ने कहा-"अरे भले आदमी ! तो तुम एक काम क्यों नहीं करते ? हमारे साथ आकर ज़रा दिल क्यों नहीं बहला लेते ? आओ ! चल कर हमारा नाच-गान देखो ! बस, तुम्हारा भी मन लग जाएगा ! चलते हो तमाशा देखने !" उसने उकसाया।

"बाप रे बाप! यह महल ऐसे ही छोड़ कर आऊँ ? मेरे यहाँ रहते ही ये छोकरे आँखों में धूल झोङ्क कर अन्दर घुस आए। मैं यहाँ से हट गया तो फिर कहना ही क्या ?" राक्षस ने कहा।

"तुम यों ही कहते हो ! नहीं तो किसी की मजाल है कि यहाँ आ जाए ! समझ लो कि आ ही गया ! तो भी तुम्हारे हाथ से बच कर जाएगा कहाँ? अच्छा, हम में से कोई यहाँ पहरा देती रहेगी। तुम आओ और हमारे साथ दिल बहला कर अपनी नौकरी पर लौट जाना !" सुकेशिनी ने कहा। उसकी बात राक्षस को भी भा गई।" तो मेरे बदले यहाँ कौन पहरा देगी?" उसने पूछा।

तब सुकेशिनी ने सुहासिनी को दिखा कर कहा-"और कोई नहीं; मेरी बड़ी बहन खुद पहरा देगी।" सुहासिनी को वहाँ पहरा देने का काम सौंप कर राक्षस के साथ सभी सरोवर की ओर चलीं।

सरोवर के किनारे राक्षस को बीच में बिठा कर लड़कियाँ उसे चारों ओर से घेर

कर नाचने लगीं। राक्षस ने खुश होकर मन में सोचा-"रोज़ इसी तरह समय कट जाय तो अच्छा हो !"

अब रोज़ राक्षस का समय लड़कियों का नाच-गान देखने-सुनने में बीतने लगा। उसके बदले वहाँ कोई लड़की पहरा देने लगी।

इस तरह कुछ दिन बीत गए। अब लड़कियों का नाच-गान देखने के लिए राक्षस खुद उतावला रहने लगा। वह अब खुद महल छोड़ कर जाने लगा और लड़कियों को बुलाने लगा। यह देख कर सुकेशिनी ने खुश होकर मन में सोचा-"चिड़िया जाल में फँस गई।"

यहाँ तक तो ठीक था। अब रह गया मन्त्र-जल छिड़क कर जुड़वें भाइयों की मूरतों को मनुष्य रूप देना। जल लाने के लिए एक बरतन भी चाहिए था। खैर, बरतन लाना तो कोई मुश्किल बात न थी। मुश्किल तो यह थी कि बरतन देखते ही राक्षस सारी बात समझ जाता। तो फिर क्या किया जाय ? आखिर सुकेशिनी ने सोच-विचार कर एक उपाय ढूँढ निकाला। सुकेशिनी जैसी बुद्धिमती लड़की के लिए यह कोई मुश्किल काम तो था नहीं ?

दूसरे दिन राक्षस के पास जाने के पहले सुकेशिनी बाग में गई। वहाँ जाकर उसने अपनी साड़ी का एक छोर मन्त्र-जल से भिगो लिया। दूसरा छोर उसने सरोवर के पानी से भिगो लिया।

इतना करके सुकेशिनी ने राक्षस के पास जाकर कहा-"आज पहरा देना मेरे जिम्मे होगा।

लेकिन तुम लौट कर मुझे बता देना कि मेरे बिना नाच-गान कैसा रहा ?"

"बहुत अच्छा !" कह कर राक्षस वहाँ से सीधे सरोवर की तरफ चला। उसको आते देख सरोवर की राजकुमारियाँ तुरन्त किनारे पर आकर नाचने-गाने लगीं।

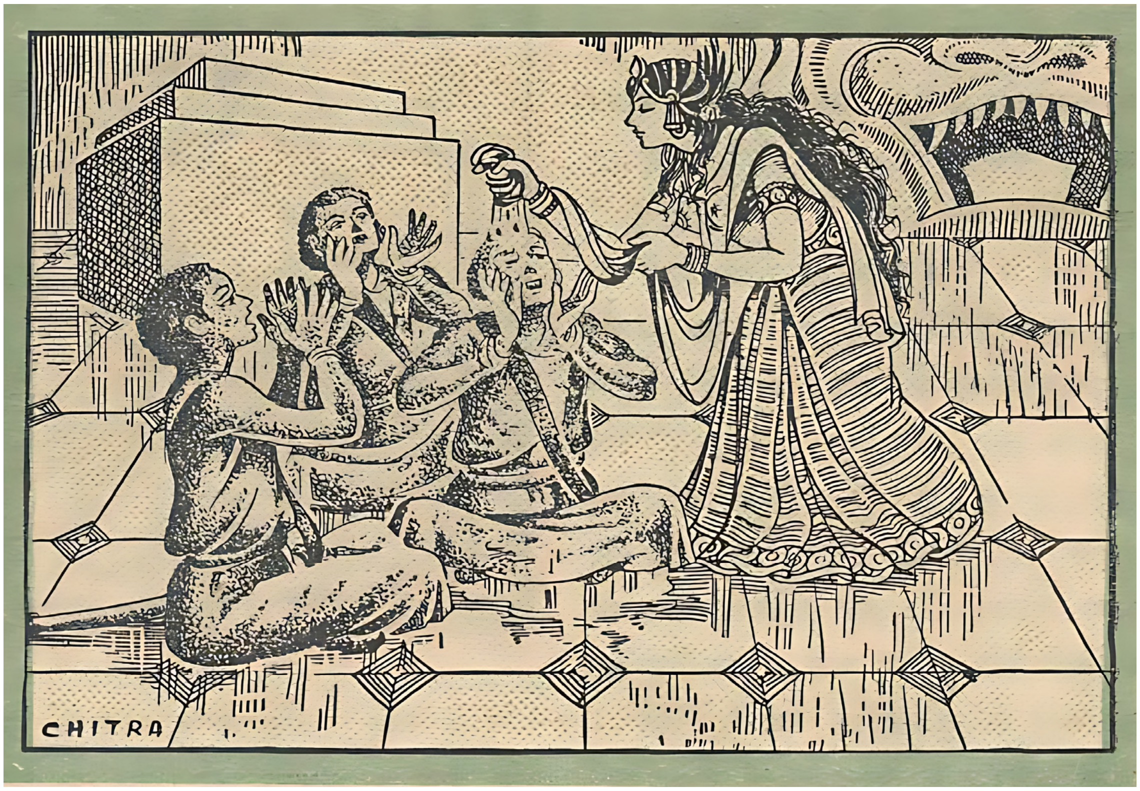

राक्षस के महल से बाहर जाते ही सुकेशिनी ने अपने आँचल का मन्त्र-जल जुड़वें भाइयों की मूरतों पर निचोड़ दिया। बात की बात में उन तीनों को अपना असली रूप मिल गया और वे कहने लगे-"यह क्या ? हम लोग यहाँ कैसे आ गए ? राक्षस कहाँ चला गया?"

यह सुन कर सुकेशिनी ने सारी कहानी उन्हें सुना दी और अन्त में कहा-"जब वह नाच-गान देखने में सुध-बुध खोए हो, तभी उसे मार डालना चाहिए। सोचो, कोई उपाय है ?"

"यह कैसे मुमकिन हो सकता है ? हमने तो वह बुकनी भी कहीं खो दी !" उदय ने मुँह लटका कर कहा।

बुकनी की डिबिया की बात सुकेशिनी भूल ही गई थी। अब याद दिलाते ही उसने कहा- "हाँ ! हाँ ! मैं तो भूल ही गई थी ! अच्छा, एक काम करेंगे। आज मैं तुमको फिर पत्थर की मूरतें बना दूँगी। कल आते वक्त वह बुकनी की डिबिया भी लेती आऊँगी।" उसकी बात सुन कर जुड़वाँ भाई बहुत खुश हुए। तब सुकेशिनी ने सरोवर के जल से भीगा हुआ अपने आँचल

का दूसरा छोर उनके मुँहों में निचोड़ दिया। तुरन्त वे तीनों पत्थर की मूरतें बन गए। इतने में राक्षस वहाँ लौट आया । उसने कहा- "तुम्हारे बिना तो कुछ आनन्द ही नहीं आया। आज तो सारा मामला बिलकुल फीका रहा।"

"सच बोलते हो ? या यों ही मेरा मज़ाक उड़ा रहे हो ? अच्छा ! कल मैं भी मजलिस में रहूँगी। बहन को यहाँ पहरा देने भेज देंगे।" यह कह कर सुकेशिनी सरोवर की ओर लौटी।

फिर तीनों बहनें मिल कर उस जगह गईं जहाँ उन्होंने सफेद बुकनी की डिबिया गाड़ दी थी। लेकिन खोदने पर उन्हें डिबिया नहीं दिखाई दी। वह छू-मन्तर हो गई थी। तीनों हक्की-चक्की सी रह गईं। आखिर सुकेशिनी ने कहा-"अब चिन्ता करने से क्या फ़ायदा ? आज महल में पहरा देने तुम जाओगी न ? तो सारा हाल उन भाइयों से कह देना ! फिर वे जैसा मन में आएगा करेंगे।" यह कह कर उसने सुभाषिणी को भेज दिया।

सुभाषिणी मन्त्र-जल और सरोवर के जल से अपने आँचल के दोनों छोर

भिगो कर महल में गई। राक्षस उसे पहरा देने के लिए वहाँ छोड़ कर खुद नाच-गान देखने चला गया। उसके जाते ही सुभाषिणी ने अपने आँचल के एक छोर का पानी जुड़वें भाइयों की मूरतों पर निचोड़ दिया। लेकिन मूरतों को असली रूप न मिला। कारण यह था कि बेचारी सुभाषिणी ने जल्दी में सरोवर के जल से भींगा हुआ अपने आँचल का छोर निचोड़ दिया था। "हाय ! हाय ! कैसी भूल हो गई मुझसे ?" सुभाषिणी ने सोचा और इस बार मन्त्र-जल वाला छोर निचोड़ दिया। तुरन्त जुड़वाँ भाई पत्थर की नींद से जाग उठे।

तब सुभाषिणी ने उनको सफेद बुकनी की डिबिया के गायब होने की बात कह सुनाई और उससे जो भूल हो गई थी वह भी बताई। सुन कर उदय ने कहा-"इन सब से यह पता चलता है कि हमारे दिन अच्छे नहीं हैं। नहीं तो बात बात में यह विघ्न कहाँ से आ जाता ?" उसे निराशा होने लगी थी।

"भगवान हमारी परीक्षा ले रहा है। हमें इतने से डर कर हिम्मत न हारनी चाहिए।" निशीथ ने उसे टोक कर कहा। "लेकिन राक्षस के लौट आने के पहले ही हमें यहाँ से भाग जाना होगा न ?" यों उदय और भी कुछ कहने जा रहा था कि सुभाषिणी ने उससे कहा-"ठहरो ! मुझे एक उपाय सुझ गया है। यहाँ अनगिनत मूरतें पड़ी हुई हैं। चलो, उनमें से तीन लाकर तुम्हारी जगह रख दें। राक्षस का डील-डौल तो बड़ा है। लेकिन उसमें अक्ल नहीं के बराबर है। वह कभी नहीं जान सकेगा कि मूरतें तुम्हारी नहीं हैं। तुम लोग बाहर झाड़ियों में जाकर छिप जाना। उसके अन्दर आते ही मैं भी तुमसे आकर मिलूँगी। पीछे देखा जायगा।"

सुभाषिणी की बातें तीनों भाइयों को जँच गईं। "अब देरी किस बात की ?" उन्होंने सोचा और तीन मूरतें लाकर अपनी मूरतों की जगह रख दीं। फिर वे बाहर जाकर एक झाड़ी में छिप गए। थोड़ी देर बाद राक्षस महल को लौट आया। सुभाषिणी को छुट्टी मिली। वह बाहर जाकर जुड़वें भाइयों से मिली और चारों सरोवर के किनारे जा पहुँचे।

[इतने दिन से जिस बुकनी के सहारे अदृश्य होकर जुड़वें भाई सब सङ्कटों से बच जाते थे, बुकनी की डिबिया को खो देने के बाद उन्होंने क्या किया ? उन पर कैसे कैसे सङ्कट आए ? क्या राक्षस को उनके बचकर भागने की उस बात मालूम हो गई ? आदि विषय अगले अङ्क में पढ़िए ।]

किसी समय अमरावती नगर ललित कलाओं का केन्द्र था। देश-विदेश से विद्यार्थीगण आकर वहाँ चित्र-कला का अभ्यास करते थे। अमरावती में चित्र-कला का अभ्यास करने वाले जितने छात्र आए थे सब में 'रत्नघोष' नाम का एक लड़का बहुत अच्छे चित्र बनाता था। उसके चित्र देख कर सब लोग प्रशंसा करते और कहते कि आगे चल कर वह बड़ा भारी चित्रकार बनेगा और अमरावती का नाम उज्ज्वल करेगा।

उसी जगह जयप्रताप और चन्द्रप्रताप नाम के और दो लड़के थे । वे भी चित्र-कला ही सीख रहे थे। सब लोगों को रत्नघोष की प्रशंसा करते सुन कर उन दोनों के मन में तरह-तरह के विचार उठने लगे।

जयप्रताप बहुत ही ईर्ष्यालु था। वह बहुत दिनों से चित्र बनाना सीख रहा था; लेकिन उसे लकीर खींचना ही न आता था। फिर वह चित्र क्या बनाता और रङ्ग क्या भरता ? उसे मालूम था कि वह जन्म-जन्म सीखने पर भी रत्नघोष की बराबरी नहीं कर सकता। इसलिए उसके मन में बड़ी जलन पैदा हो गई। उसने सोचा-"चलो, रत्नघोष के बारे में ऐसी-ऐसी बातें फैलाऊँ कि लोग उसकी बुराई करने लगें।"

उस दिन से जब कभी रत्नघोष की चर्चा उठती तो वह कहता-"वह बेचारा चित्र बनाना क्या जाने ? अरे ! वे सब चित्र तो अध्यापक के बनाए हुए हैं ! वह बेचारा चित्र बनाना तो दूर रहा, एक लकीर तक नहीं खींच सकता !" जब लोग नहीं मानते तो वह कहता-"अच्छा, फिर से वैसा चित्र बनाने को कहो तो पोल खुल जाएगी।" हाँ, चन्द्रप्रताप की बात ही अलग थी। वह अभी-अभी चित्र बनाना सीख रहा था। जब से उसने रत्नघोष के चित्र देखे थे तभी से

अमीचन्द

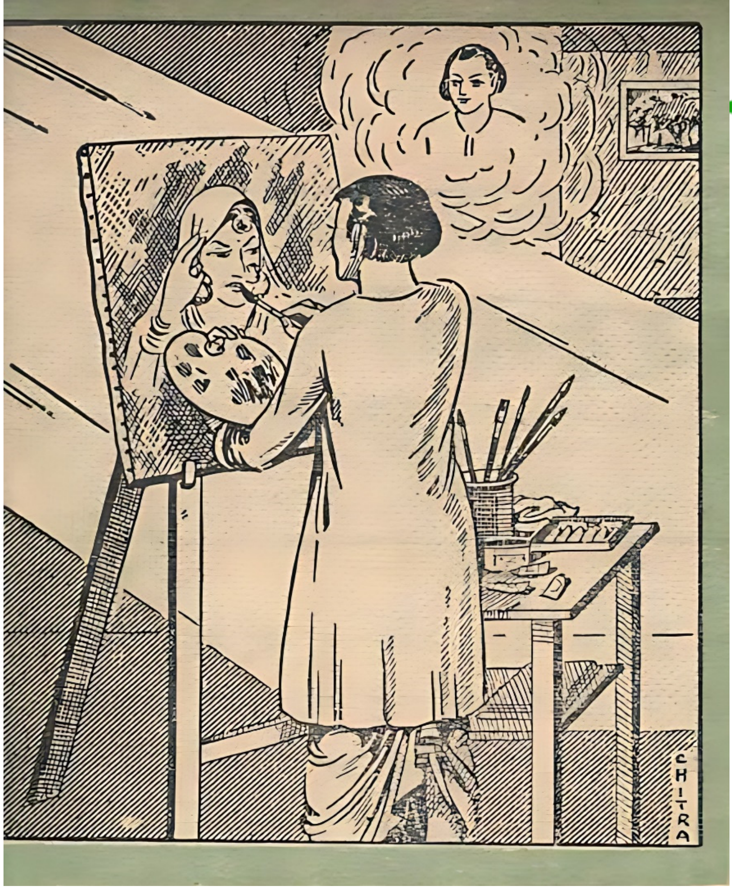

उसने उसे अपना गुरू मान लिया था। इसी से जब कोई रत्नघोष की प्रशंसा करता तो उसका हृदय आनन्द से उमड़ पड़ता। "क्या मैं अपनी ज़िन्दगी में कभी उसकी बराबरी कर सकूँगा ? वैसे चित्र बना सकूँगा ? क्या कभी लोग मेरी भी वैसी प्रशंसा करेंगे ?" वह अपने मन में सोचता और पुलकित हो उठता। रत्नघोष के खिलाफ जो बुरी बातें फैल रही थीं उन्हें सुन कर उसका हृदय व्याकुल हो उठता और वह बहुत दुखी हो जाता।

चन्द्रप्रताप इस तरह रत्रघोष के चित्रों पर ही ध्यान रख कर बड़ी लगन के साथ काम करने लगा। नींद में भी वह यही गुनगुनाता। वह हमेशा सोचता-"हाय ! रत्नघोष के और मेरे चित्रों में कितना अन्तर है ? क्या मैं भी कभी वैसे ही चित्र बना सकूँगा ?"

यों कुछ दिन तक धुन के साथ काम करने पर चन्द्रप्रताप भी अच्छे चित्र बनाने लगा। उसके और रत्नघोष के चित्रों में बहुत समानता होने लगी थी। कभी-कभी तो दोनों के चित्रों में बिलकुल फरक नहीं जान पड़ता था। यह देख कर चन्द्रप्रताप को मन ही मन तसल्ली हुई और उसने सोचा-"कुछ दिनों में मैं भी रत्नघोष की तरह चित्र बनाने लगूँगा।"

एक बार अमरावती में बड़ी भारी चित्र-प्रदर्शिनी हुई। उस प्रदर्शिनी में देश-विदेश के नामी-नामी चित्रकारों ने अपने-अपने चित्र भेजे। उसी के लिए रत्नघोष ने भी एक चित्र बनाया। चित्र पूरा हो गया था। लेकिन थोड़ा सा काम बाकी था। वह चित्र बहुत अच्छा बन पड़ा था। जो देखता कहता कि पुरस्कार ज़रूर इसे ही मिलेगा।

जब जयप्रताप को इसकी खबर लगी तो उसके मन की जलन और भी बढ़ गई।

उसने सोचा-"मुझे कोई पूछता ही नहीं। फिर मैं देखते-देखते इस रत्नघोष की बढ़ती क्यों होने दूँ ?' यह सोच कर वह डाह के मारे एक दिन रत्नघोष के घर गया। रत्नघोष का ध्यान दूसरी तरफ लगा देख कर उसने चुपके से उसके रङ्गों में एक तरह की दवा मिला दी और चुपचाप चला आया। रत्नवोष ने उन्हीं रङ्गों से चित्र पूरा किया।

दूसरे दिन प्रदर्शिनी के भवन में कहीं पैर रखने की जगह न थी। सब लोग मन में सोच रहे थे कि रत्नघोष को ही पुरस्कार मिलेगा। इसलिए बड़ी उत्कण्ठा से प्रतीक्षा कर रहे थे। परीक्षकों ने पहले रत्नघोष के चित्र पर का परदा ही हटाया। लेकिन यह क्या ? चित्र पर भद्दे धब्बे पड़े हुए थे जैसे उसे दीमक चाट गए हों। उसे देखते ही मन में घृणा पैदा हो जाती थी।

"कितना भद्दा है ? यह तो रत्नघोष का नहीं है !" कुछ लोगों ने कहा। "हाँ हाँ ! यह रत्नघोष का चित्र कैसे हो सकता है ?" परीक्षकों ने भी कहा। तुरन्त रत्नघोष को बुलाया गया। वह उसे देखते ही "हाय भगवान !" कह कर बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ा।

इतने में चन्द्रप्रताप भी घबराया हुआ दौड़ कर वहाँ आया। यह क्या ? यह रत्नघोष का चित्र तो है ? लेकिन यह ऐसा भद्दा कैसे हो गया ? इसमें ज़रूर कुछ न कुछ दगा हुआ है! मैंने अपनी आँखों से उसे चित्र बनाते देखा था। उस समय तो यह ऐसा भद्दा नहीं था ! ये धब्बे कहाँ से आ गए इसमें ? ज़रूर कुछ न कुछ दाल में काला है !" उसने हाँफते हुए कहा।

"सत्य कभी न कभी प्रगट हो ही जायगा। परीक्षकों को भी इसकी टोह में लगे रहना होगा और कार्रवाई करनी होगी।" लोगों ने कहा।

परीक्षक भी रत्नघोष की दशा देख कर बहुत दुखी हुए। उन्हें बहुत दया आई। चित्र पर धब्बे देख कर उन्हें बहुत अचरज भी हुआ। लेकिन उन्होंने कहा कि इस हालत में उस चित्र को पुरस्कार नहीं दिया जा सकता। फिर उन्होंने सभी चित्र देखने के बाद एक चित्र को पुरस्कार देने का निश्चय किया। वह चित्र चन्द्रताप का बनाया हुआ था। इसलिए उसी को पुरस्कार मिला।

चन्द्रप्रताप वह पुरस्कार लेकर दौड़ा हुआ रत्नघोष के पास गया और उससे बोला-"प्यारे मित्र ! तुम्हारा कौशल सिर्फ मैं ही नहीं, सारा संसार जानता है। स्वयं परीक्षक भी जानते हैं। लेकिन क्या किया जाय ? भगवान की इच्छा ! नहीं तो सिर्फ़ इसी देश में नहीं; सारे संसार में तुम्हारी जय जयकार होती। यह पुरस्कार तुम ले लो ! मैं इसके योग्य नहीं। वास्तव में यह पुरस्कार तुम्हारा ही है। मैं तुम्हारा द्वितीय होने में ही अपनी इज्जत समझता हूँ। अगर मैं कभी आगे बढ़ भी गया तो तुम्हारे अशीर्वाद से ही। क्योंकि मैं तुम्हें अपना गुरू समझता हूँ।" यों उसने अपना पुरस्कार उसके हाथ में रख दिया और अपना अनुराग जताया।

यह देख कर परीक्षक लोग सन्न रह गए। आखिर उन्होंने कहा-"हमारा निश्चय है कि इस बार दो पुरस्कार दिए जाएँ। अगर चित्र का पुरस्कार रत्नघोष को मिलता है तो हम चन्द्रप्रताप को उसकी उदारता के लिए पुरस्कार पाने के योग्य ठहराते हैं।" यह कह कर उन्होंने चन्द्रप्रताप को भी और एक पुरस्कार दिया।

भीम नगर में किसी समय महादेव शास्त्री नाम के एक अमीर आदमी रहते थे। उनके मन में एक बार ख्याल आया कि देशाटन कर आएँ। वे काफी रुपया-पैसा लेकर शुभ समय में घर से निकल पड़े। अनेक तीर्थों और दर्शनीय स्थानों की यात्रा करते हुए शास्त्रीजी आखिर दिल्ली जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने किसी से पूछा कि यहाँ देखने लायक कौन-कौन सी जगहें हैं। उस आदमी ने अनेक स्थानों के नाम बताए और अन्त में कहा-"यहाँ जुमा मसजिद नामक एक बहुत बड़ी मसजिद है। वह भी देखने लायक है।" महादेव शास्त्री 'बहुत अच्छा' कह कर चले और एक-एक जगह देखते अन्त में जुमा-मसजिद पहुँचे।

उत्तर हिन्दुस्तान में सब लोग जूते पहनते हैं। लेकिन दक्खिन में ज्यादातर लोग गर्मियों के सिवा कभी जूते नहीं पहनते। महादेव शास्त्री को भी जूते पहनने की आदत नहीं थी। लेकिन वहाँ सब के पैरों में जूते देख कर उन्होंने भी सोचा कि एक जूतों का जोड़ा खरीद लें तो अच्छा हो।

इसलिए दिल्ली में उन्होंने जूतों का एक सुन्दर जोड़ा खरीद लिया। वे जूते पहन कर वे बड़े शौक से जुमा मसजिद देखने गए। वहाँ उन्होंने देखा कि सब लोग जूते बाहर दरवाज़े पर ही छोड़ रहे हैं। इसलिए उन्होंने भी जूते उतार लिए।

जुमा-मसजिद सचमुच ही देखने लायक जगह थी। उसे कई सौ बरस पहले दिल्ली के एक बादशाह ने करोड़ों रुपए खर्च करके बनवाया था। उतनी आलीशान इमारत देख कर महादेव शास्त्री अवाक रह गए। वहाँ मुसलमान लोग तरह-तरह के कीमती कपड़े पहन कर आ रहे थे और घुटने टेक कर नमाज़ पढ़ रहे थे। उनके 'अल्लाहो अकबर'

इन्दुमोहन

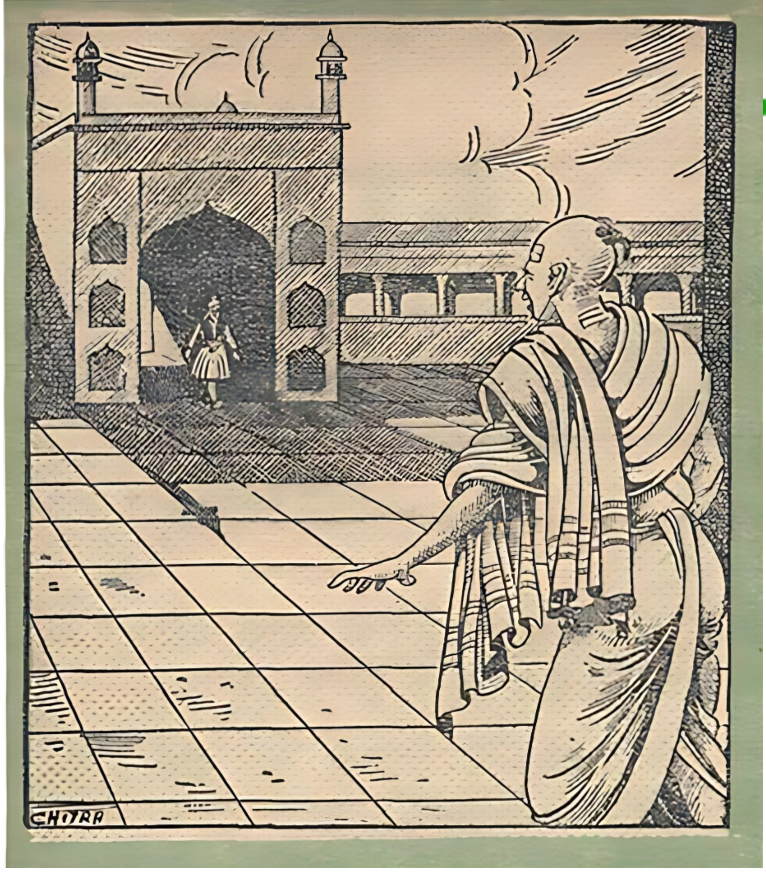

मसजिद में घुस रह था। वह डील-डौल का बहुत लम्बा-चौड़ा था। उसके काले घुँघुराले बाल, लाल-लाल आँखें, झवरीली मूँछें और चौड़ी छाती देखते ही डर लगता था। उसके चलने से मानो धरती काँप रही थी। उसको देखते ही महादेव शस्त्री का कलेजा धुक धुक करने लगा। तिस पर उस पठान की कमर में एक छुरा भी लटक रहा था। बस, यह देख कर तो महादेव शास्त्री थर-थर काँपने लगे। इतने में उस पठान की नज़र भी भटकती हुई आकर शास्त्रीजी पर पड़ी। उनके फीके मुँह पर हवाइयाँ उड़ते देख कर उसने सोचा कि ज़रूर कुछ न कुछ दाल में काला है। वह सीधे शास्त्रीजी की ओर देखता हुआ कदम बढ़ा कर अन्दर आया। इधर शास्त्रीजी ने ताड़ लिया कि उस पठान की नज़र उन पर पड़ गई है। उन्हें ऐसा लगा मानों उस पठान की कमर में बँधा हुआ छुरा उड़ कर उन्हीं की तरफ आ रहा है। वे जल्दी-जल्दी दरवाजे पर पहुँच गए। यह सब देख कर पठान का शक और भी गहरा हो गया। शास्त्री ने घबराहट में जल्दी-जल्दी जूते पहन लिए और सीढ़ियों से उतरने लगे। "वह बदमाश मद्रासी मेरे जूते पहन कर भागा जा रहा है। पकड़ लो

की आवाज़ों से आसमान गूँज रहा था। ईश्वर के प्रति उनकी ऐसी निष्ठा देख कर महादेव शस्त्री खुश हुए।

यह सब तो ठीक था। लेकिन एक कारण से महादेव शास्त्री की छाती ज़ोर से धड़कने लगी। वे सोचने लगे- "इतने मुसलमानों के बीच मैं अकेला हिन्दू खड़ा हूँ ! क्या मैं खतरे में नहीं हूँ ? एक हिन्दू को अपनी मसजिद में घुसा देख कर क्या वे चुप रहेंगे ?" यह सोचते ही महादेव शास्त्री को बहुत डर लगा। उन्होंने सोचा- "उनके पहचानने के पहले ही मैं यहाँ से खिसक जाऊँ तो अच्छा है !" यह सोच कर वे पीछे मुड़े।

इतने में उन्हें एक पठान दिखाई दिया जो जूते बाहर छोड़ कर

उसे ! वह काफिर इसीलिए आया था मसजिद में !" पठान पीछे से चिल्लाने लगा। उसने यह नहीं सोचा कि वे जूते उस काफिर के भी हो सकते हैं। उसे तो शास्त्री जी की घबराई हुई सूरत देखते ही शक हो गया था। तिस पर वे भागे भी जा रहे थे !

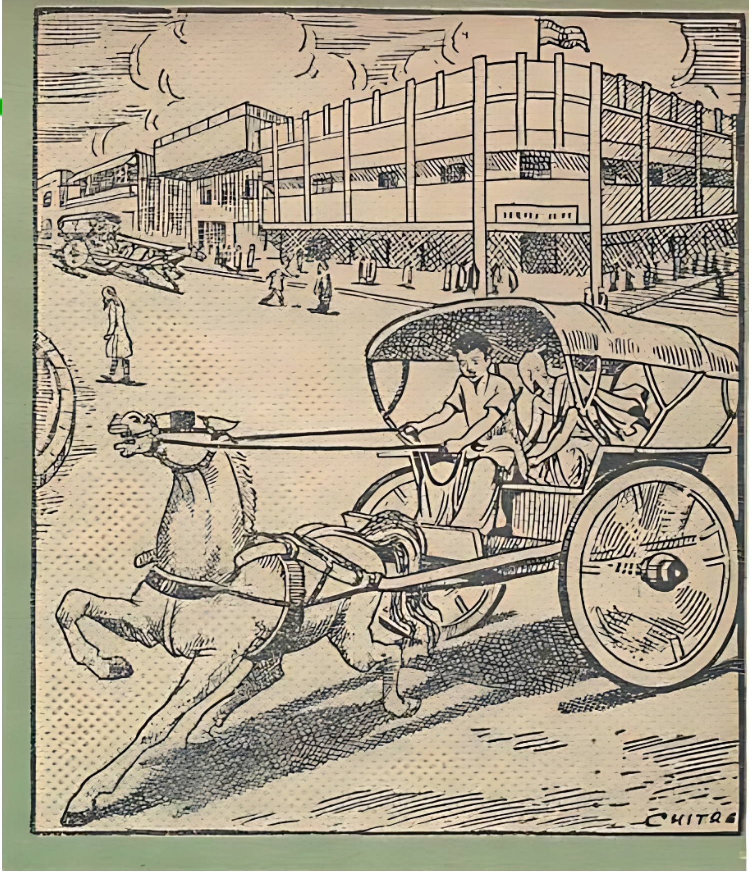

पठान शास्त्री जी को पकड़ने के लिए दौड़ कर बाहर आया। शास्त्री जी को जब यह मालूम हुआ तो उन्होंने रास्ते में जाते हुए एक ताँगे को रोका, उछल कर उसमें चढ़े और उस ताँगे वाले से कहा कि- "चलो ! तेजी से ले चलो ताँगा !" यह देख कर पठान ने सोचा- "मैं तुम्हें यों भाग जाने दूँगा बच्चू !" एक दूसरे ताँगे को रोक कर वह उसमें सवार हो गया और आगे जाने वाले ताँगे का पीछा करने को कहा।

तब शास्त्री ने अपने ताँगे वाले से कहा-"वह हमारा पीछा कर रहा है। हमें जान बचा कर भागना है। घोड़े को सरपट दौड़ाओ ! मैं तुम्हें अच्छा ईनाम दूँगा।"

"घोड़े को जितनी तेज़ी से हो सके दौड़ाओ ! हमें उस अगले ताँगे वाले सवार को पकड़ना है। वह चोर है! तेज़ी से जाने दो। मैं तुम्हें ईनाम दूँगा।" पठान ने अपने ताँगे वाले से कहा। इस तरह आगे शास्त्री जी का ताँगा और उसके पीछे पठान का ताँगा प्राण-पण से दौड़ने लगे। एक घण्टे तक इस तरह दौड़ते-दौड़ते दोनों घोड़े थक गए।

अब पठान को कुछ नहीं सूझा तो वह अपने ताँगे में से चिल्लाया-"वह चोर है चोर ! उसे रोको !"

यह सुन कर कुछ राह चलते लोगों ने शास्त्री के ताँगे को रोक लिया। तब शास्त्री ने उनके बीच घुस कर पनाह लेते हुए कहा-"मुझे उससे बचाइए ! मैं भूल से एक मसजिद देखने गया था। इसलिए वह मुझे मारने के लिए पीछा कर रहा है।" इतने में उस पठान ने वहाँ आकर

कहा-"वाह ! वाह ! क्या कहानी गढ़ रहा है ? मेरे जूते चुरा लाया और ऊपर से कहता है कि मैं मारने के लिए पीछा कर रहा हूँ !" यह सुन कर शास्त्री हक्का-बक्का रह गया। "क्या कहा ? तेरे जूते ? ये मेरे जूते हैं ! मैंने कल ही खरीदे हैं !" यह कह कर उन्होंने अपने पैरों की तरफ़ देखा। उसी समय पठान ने भी उस ओर नज़र फेंकी। बस, दोनों के मुँह पर काटो तो खून नहीं ! पत्थर की तरह खड़े रह गए। यह देख कर जो लोग चारों

तरफ से जमा हो गए थे उन्होंने पूछा-"क्या बात है ? तब शास्त्रीजी ने कहा-"भैया ! इस जोड़े में एक तो मेरा जूता है। लेकिन घबराहट मैं मैंने एक किसी दूसरे का पहन लिया है !" "वह किसी दूसरे का नहीं है ! वह दूसरा जूता मेरा है ! तूने घबराहट में एक तो मेरा और एक किसी दूसरे का जूता चुरा लिया है !" शास्त्रीजी की बात सुन कर पठान बोला।

तब शास्त्रीजी ने कहा-"भैया ! मैं जनेऊ हाथ में लेकर कहता हूँ। इन में से यह छोटा जूता मेरा है ! देखा ! मेरे पैर में ठीक बैठता है कि नहीं !" यों उन्होंने पठान को समझाया। तब पठान ने चकित होकर कहा-"तो मुझे अब दूसरे जूते के लिए फिर एक बार मसजिद तक दौड़ना पड़ा !" "अरे भैया ! तुम्ही को नहीं ! मुझे भी आना पड़ेगा ! यह अकेला जूता लेकर मैं क्या करूँगा ?" शास्त्रीजी ने जवाब दिया।

आखिर दोनों एक ही ताँगे में चढ़ कर फिर मसजिद तक गए। पठान ने अपना दूसरा जूता पहनते हुए कहा-"शास्त्री ! मालूम नहीं; आज सवेरे उठ कर किस मनहूस का मुँह देखा था। बेकार की हैरानी हुई !" इस पर शास्त्री ने हँसते हुए जवाब दिया-"हैरानी बेकार कैसे गई ? ताँगेवालों को तो खासा फायदा हुआ न ?" यह कह कर दोनों अपनी राह चले गए।

उत्कल देश पर किसी समय उपेन्द्रवर्मा नाम का राजा राज्य करता था। उसने अपने दूर के रिश्तेदार भुजङ्गवर्मा नाम के आदमी को सेनापति के पद पर बिठा दिया था। यह भुजङ्गवर्मा उसके लिए सचमुच ही आस्तीन का साँप साबित हुआ। उसने राजा उपेन्द्रवर्मा की हत्या कर डाली और सेना की मदद से खुद राजा बन बैठा।

जिस समय यह वारदात हुई उस समय युवराज अनन्तवर्मा नगर में नहीं था। जब यह खबर चारों ओर फैल गई तो उसके मित्रों ने उसे सलाह दी कि तुम लौट कर मत जाओ। नहीं तो वह तुम्हें भी मार डालेगा। इसलिए अनन्तवर्मा वेष बदल कर इधर-उधर घूमने और दिन बिताने लगा।

उधर भुजङ्गवर्मा ने अपने सिपाहियों को भेज कर उसकी खोज शुरू करवा दी। इधर अनन्तवर्मा के दिन बड़ी मुशकिल से कट रहे थे। वह युवराज था । फिर भी आज दाने दाने को तरसता था। भेद खुलने पर जान का भी खतरा था।

एक दिन जङ्गल में वह एक ऊँचे पेड़ पर चढ़ कर फल तोड़ रहा था कि इतने में उसे घुड़सवारों के आने की आहट सुनाई दी। वह पत्तों की आड़ में छिप गया। थोड़ी देर में उसने देखा कि पचास चोर आकर घोड़ों से उतर रहे हैं। उनमें से दो ने एक चट्टान को हटा दिया जो पेड़ की बगल में पड़ी हुई थी। उसके हटते ही एक बहुत बड़ी सुरङ्ग दिखाई पड़ी। चोरों ने अपने घोड़ों पर से पेटियाँ उतारीं और एक-एक करके सबको सुरङ्ग में छिपा दिया। आखिर चोरों के सरदार ने एक लड़की को जिसके हाथ पैर बँधे और मुँह में कपड़े हँसे हुए थे, एक घोड़े पर से उतारा।

गोपीनाथ

उसने उसे उठा कर कन्धे पर रखा और सुरङ्ग में छिपा कर बाहर लौट आया।

अनन्तवर्मा पेड़ पर छिपा हुआ यह सब देख रहा था। थोड़ी देर में सब चोर एक-एक कर बाहर आए। फिर चट्टान को पहले की तरह उसके मुँह पर बिठा दिया और अपने-अपने घोड़ों पर सवार होकर आँखों से ओझल हो गए।

तब अनन्तवर्मा चुपके से नीचे उतर आया। उसने चट्टन हटा दी। अन्दर उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। वह सीढ़ियों पर से नीचे उतरा। अन्दर जाकर सुरङ्ग बहुत चौड़ी हो गई थी। अन्त में वह एक विशाल महल में पहुँचा। उसके एक कमरे में उसे वह लड़की रोती दीख पड़ी जिसे उसने सरदार के कन्धे पर बँधे देखा था। उसने झट उसके सारे बन्धन खोल दिए। आश्चर्य ! वह लड़की और कोई नहीं थी। जिस दुष्ट ने उसके पिता को मार कर राज-पाट छीन लिया था उसी भुजङ्गवर्मा की वह इकलौती लड़की हेमलता थी। उसे उसने पहले भी कई बार देखा था। लेकिन हेमलता उसे पहचान न सकी। क्योंकि वह वेष बदले हुए था। वह उसके पैरों पर गिर पड़ी और गिड़गिड़ा कर कहने लगी-"मुझे बचाओ ! तुम्हारा भला होगा। ये चोर मुझे काली मैया के आगे बलि देने के लिए बाँध लाए हैं।"

अनन्तवर्मा ने सोचा-"जिस पापी ने मेरे पिता को मार डाला उसकी बेटी को मैं बचाऊँ ?" लेकिन हेमलता की दुर्दशा देख कर वह दया से पिघल गया। उसने सोचा-"यह सच है कि इस लड़की के पिता ने मेरे पिता के प्रति विश्वासघात किया। लेकिन लड़की ने तो मेरा कुछ नहीं बिगाड़ा और बड़ों का कहना है कि बुराई के बदले भलाई करने में ही बड़प्पन है!"

यह सोच कर उसने उसे धीरज दिया और सावधानी से छुड़ा कर बाहर ले आया।

बाहर जाकर अनन्तवर्मा हेमलता के साथ एक गरीब ब्राह्मण के घर में रहने लगा। उसने हेमलता पर यह प्रगट न होने दिया कि वह उसके बाप का जानी दुश्मन है। इसलिए हेमलता उससे बार-बार कहती-"भैया! मुझे पिताजी के पास ले चलो ! वे इस देश के राजा हैं। तुम्हें खूब ईनाम देंगे।" लेकिन अनन्तवर्मा जानता था कि भुजङ्गवर्मा काले साँप के बराबर है। उसके पास जाना क्या था, मौत के मुँह में पाँव रखना था। इसलिए वह हिचकिचाने लगा। आखिर उसने सोचा-"मैं न जाऊँ, न सही, लेकिन इसको तो किसी के साथ उसके पिता के पास भेज देना ही चाहिए। किसके साथ इसे भेजा जाय ?"

दूसरे दिन अनन्तवर्मा जङ्गल में फल तोड़ लाने गया और शाम को लौट आया तो ब्राह्मण के घरवालों को आपस में काना-फूसी करते सुना-"यह लड़की अवश्य राजा की खोई बेटी है। इसे वही उठा लाया होगा। अगर हम इसे राजा के पास ले जाकर सौंप दें तो खूब ईनाम मिले।"

उस ब्राह्मण के एक लड़का था जिसका नाम था धन्नू पाण्डे। उसने कहा-"अरे ! ईनाम का तो पूछना ही क्या ? राजा ने तो ढिँढोरा पिटवा दिया है कि जो मेरी बेटी को खोज ला देगा उसे मैं अपना आधा राज दूँगा और अपनी बेटी ब्याह दूँगा।" ये बातें कान में पड़ते ही अनन्तवर्मा सारा किस्सा समझ गया। वह यह भी समझ गया कि ईनाम का नाम सुन कर ब्राह्मण के घरवाले मुँह से लार टपका रहे हैं। इसलिए उसने उनके पास जाकर कहा-"भूदेव ! आप इस लड़की को ले जाकर राजा को सौंप दीजिए और मुँह माँगा ईनाम लीजिए ! कहिएगा कि उसे हम जङ्गल में चोरों के हाथ से छुड़ा

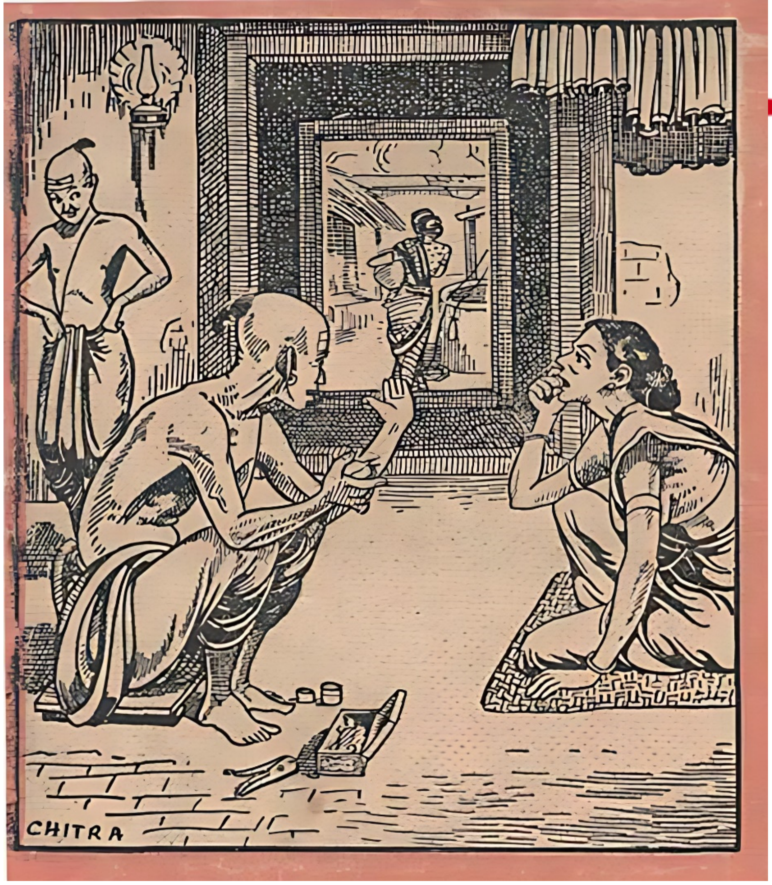

लेकिन उस लड़की ने पहले ही निश्चय कर लिया था कि वह अनन्तवर्मा के सिवा और किसी से ब्याह नहीं करेगी। उसे क्या मालूम था कि अनन्तवर्मा क्यों इस तरह सुअवसर खो रहा है ?

धन्नू पाण्डे हेमलता को अपने साथ ले गया और राजा के सामने ले जाकर गर्व के साथ कहने लगा-"हुजूर ! यह है आपकी बेटी ! एक-दो नहीं; पूरे पाँच सौ हथियार-बन्द डाकुओं को मार भगा कर मैं इसे बचा लाया हूँ। अब आपकी मर्जी !"

लाए हैं। कहिएगा कि हमींने इसे बचाया है। मेरा जिक्र उनसे नहीं कीजिएगा।"

अपने पिता का ढिँढोरा हेमलता ने भी सुन लिया था। इसलिए उसने अनन्तवर्मा से कहा-"चलो, हम अभी यहाँ से चले जाएँ। तुम मुझे पिताजी को सौंप कर ईनाम पा लेना !"

लेकिन अनन्तवर्मा ने कहा-"नहीं, मैं नहीं आ सकता। इस ब्राह्मण का मेरे ऊपर बड़ा एहसान है। इसलिए मैं भी इसकी कोई भलाई करना चाहता हूँ। तुम इस ब्राह्मण के साथ जाना और अपने पिताजी से कहना कि इसने मुझे बचाया है। तुम इतना करोगी तो मुझे बहुत खुशी होगी।"

उसकी बातें सुन कर राज दरबार के सब लोग हँसने लगे। लेकिन अपनी बेटी को देख कर भुजङ्गवर्मा को बहुत खुशी हुई। उसने तुरन्त शाल-दुशाले मँगवा कर धन्नू पाण्डे की भेंट किए और एक बड़ी जागीर देकर उस से कहा कि "आप अकसर हमारे दरबार में आते-जाते रहिए !"

यह सुन कर धन्नू पाण्डे ने कहा-"हुजूर ! क्या आपने बेटी देने का वादा नहीं किया था ?" तब राजाने कहा-"अच्छा! अभी तुम जाओ ! अच्छी साइत देख कर आना। अथवा मैं खुद तुम्हें बुला भेजूँगा।" यह कह कर उसने किसी तरह उसकी बला टाली।

धन्नू पाण्डे घर आया और खुशी से उछलते-कूदते अपनी माँ को वह खुश खबरी सुनाई-" ज्यों ही अच्छी साइत मिलेगी त्यों ही तुम राजा की समधिन बन जाओगी!" उसने कहा। "अरे जा ! जा ! फिर कभी भूल कर भी उधर न जाना! नहीं तो राजा का पहरेदार तुम्हें गरदनिया देकर बाहर निकाल देगा !" उसकी माँ ने कहा। "राजकुमारी से मेरा ब्याह नहीं होगा तो मैं कुएँ में डूब कर मर जाऊँगा !" धन्नू पाण्डे ने कहा। "सुन बेटा ! हमारे घर में जो एक लड़का रहता है न ! राजकुमारी उससे प्यार करती है और वह उसीसे ब्याह करेगी। देखना ! कल या परसों उसे बुलावा आ जाएगा। उसके वहाँ जाते ही राजा धूम-धाम से दोनों का ब्याह कर देगा। इसलिए मेरी बात मानो और उस लड़की की आस छोड़ दो। राजा ने जो जागीर दी वही क्या कम है ?" उसकी माँ ने समझाया।

लेकिन धन्नू पाण्डे ने कुछ न सुना। उसने सोचा-"राजकुमारी इस लड़के से प्यार करती है। इसलिए मैं इसे सोते वक्त उठा ले जाकर किसी कुँए में फेंक दूँगा। इससे पिण्ड छूटने के बाद राजकुमारी मेरे सिवा और किस से ब्याह करेगी ?"

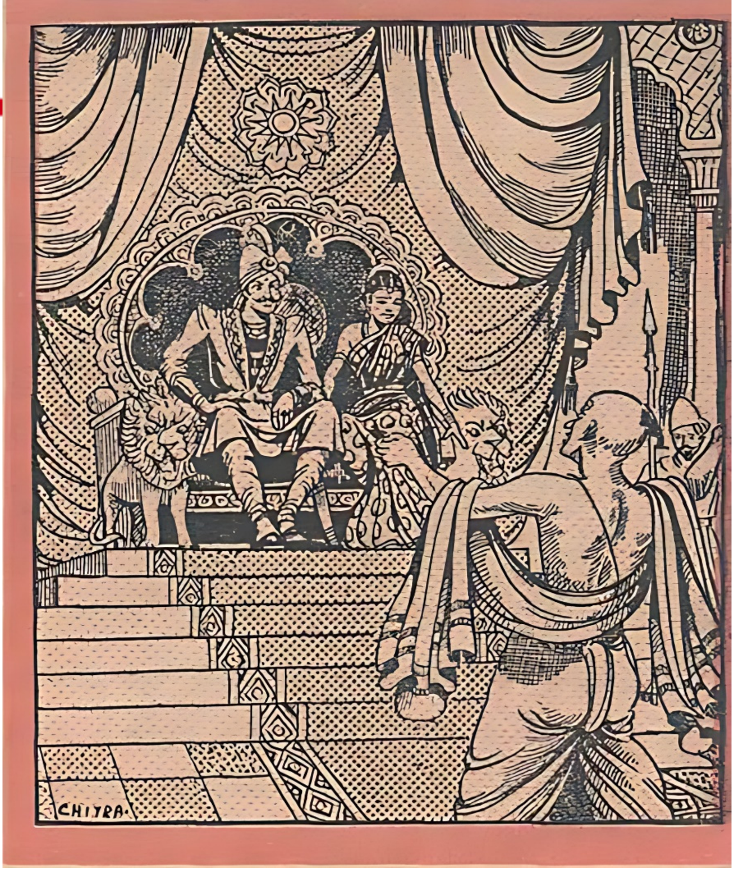

यह सोच कर उसी रात जब अनन्तवर्मा घोड़े बेच कर सोया हुआ था, उसने एक आदमी की मदद से उसे चारपाई सहित उठा ले जाकर एक कुँए में डाल दिया और खुशी खुशी घर लौट आया। उधर हेमलता ने अपने पिता से कहा-"धन्नू पाण्डे के घर में कोई राजकुमार रहता है। वह अपनी बात सब से छिपाता है। किसी पर प्रगट होने नहीं देता।"

यह सुन कर भुजङ्गवर्मा ने तुरन्त अपने सिपाहियों को भेजा कि "जाओ, देख आओ कि वह राजकुमार कौन है ?" सिपाहियों ने ब्राह्मण के घर जाकर पूछा कि "आपके घर में जो राजकुमार रहता है वह कहाँ है ?"

उन्होंने कहा-"कौन राजकुमार ? हमें कुछ नहीं मालूम !"

इन सब की आहट सुन कर कुए में पड़ा हुआ अनन्तवर्मा जिसे अब तक होश आ गया था चिल्ला उठा। सिपाहियों ने दौड़ कर उसे बाहर निकाला और पूछा-"तुम कुँए में कैसे गिरे ?" बस, धन्नू पाण्डे के होश-हवास उड़ गए। लेकिन अनन्तवर्मा उसका कोई नुकसान नहीं करना चाहता था। इसलिए उसने कहा-"पैर फिसल गए थे और गिर पड़ा था।" सिपाही अनन्तवर्मा को राजा के पास ले गए। अनन्तवर्मा टाल-मटोल नहीं कर सकता था। भेष बदले होने पर भी भुजङ्गवर्मा ने उसे देखते ही पहचान लिया। अब तो वह अपने किए पर पछताने लगा। "जो बीत गई सो बीत गई। अब तुम हेमलता से ब्याह कर लो और सुख से राज करो ! मैं जङ्गल जाकर तप करना चाहता हूँ।" उसने अनन्तवर्मा से कहा।

बड़ी धूम-धाम से हेमलता और अनन्तवर्मा का ब्याह हो गया। दोनों सुख से राज करने लगे।

कुछ दिन बाद एक बार जब अनन्तवर्मा जङ्गल में शिकार खेलने गया तो उसे एक जगह किसी के रोने की आवाज सुनाई दी। उसने नज़दीक जाकर देखा तो धन्नू पाण्डे था ! उसे किसी ने पेड़ से बाँध दिया था। "हुजूर ! चोरों ने समझ लिया कि मैं ही राजकुमारी को सुरङ्ग से छुड़ा ले गया था। इसलिए वे रातों-रात मुझे उठा ले आए। वे मुझे इस पेड़ से बाँध कर मार-पीट रहे थे कि इतने में आप के आने की आहट हुई और वे भाग गए।" उसने रोते-धोते कहा।

अनन्तवर्मा ने झट धन्नू पाण्डे के बन्धन खोल दिए। उसी दिन उसने सिपाहियों के साथ जाकर सुरङ्ग पर धावा करके चोरों को पकड़ लिया और इस तरह उनके अत्याचारों से लोगों को बचाया।

कहते हैं–किसी समय एक जादूगर रहता था। वह बहुत बूढ़ा और बहुत भला आदमी था। एक गाँव की एक गली में एक छोटी सी दुकान खोल कर अपनी रोज़ी कमाता था वह। एक छोटे लड़के के सिवा किसी को नहीं मालूम था कि वह एक जादूगर है।

उस छोटे लड़के के माँ-बाप कोई नहीं थे। दुनियाँ में उसका कोई न था। वह जादूगर की दूकान के दरवाज़े पर बैठा रहता और आने-जाने वालों को अन्दर बुलाता। उसे दूकान में हर जगह जाने और हर चीज़ को देखने की इजाज़त थी। लेकिन जादूगर ने उसे एक चीज़ छूने से मना कर दिया था।

बह थी एक वीणा। बड़ी विचित्र वीणा थी बह। दूकान में आने वाला हरेक ग्राहक उसका दाम पूछता। लेकिन जादूगर कहता कि वह बिकने वाली नहीं है। वे राजे-महाराजे ही क्यों न हों; उन्हें वीणा छूने तक नहीं देता।

एक दिन लड़के ने पूछा-"दादा ! तुम इस वीणा को बेच क्यों नहीं देते ? सब लोग चाहते हैं इसे। अच्छी कीमत मिलेगी। "तब बूढ़े ने जवाब दिया-"नहीं बेटा ! जब तुम बड़े हो जाओगे तो मैं यह वीणा तुम्हें दे जाऊँगा। यह वीणा देवताओं का सङ्गीत सुनाती है। इस वीणा के प्रभाव से तुम्हारा यश सारे संसार में फैल जाएगा।" इतना कह कर बूढ़े ने वीणा हाथ में ली और बजाई। तुरन्त दिव्य सङ्गीत सुनाई देने लगा।

जो कोई उस वीणा का सङ्गीत सुनते सुध-बुध सब भूल जाते। बात यह थी कि नादूगर ने उस वीणा के अन्दर एक देवी को कैद कर रखा था। वह बहुत दिनों से उसी में रहती थी। इसीलिए उस वीणा तारों पर उँगली छूते ही दिव्य-सङ्गीत सुनाई देने लगता था। उस देवी को भी इस अनाथ बालक से बहुत प्रेम हो गया था।

कुमारी अमला

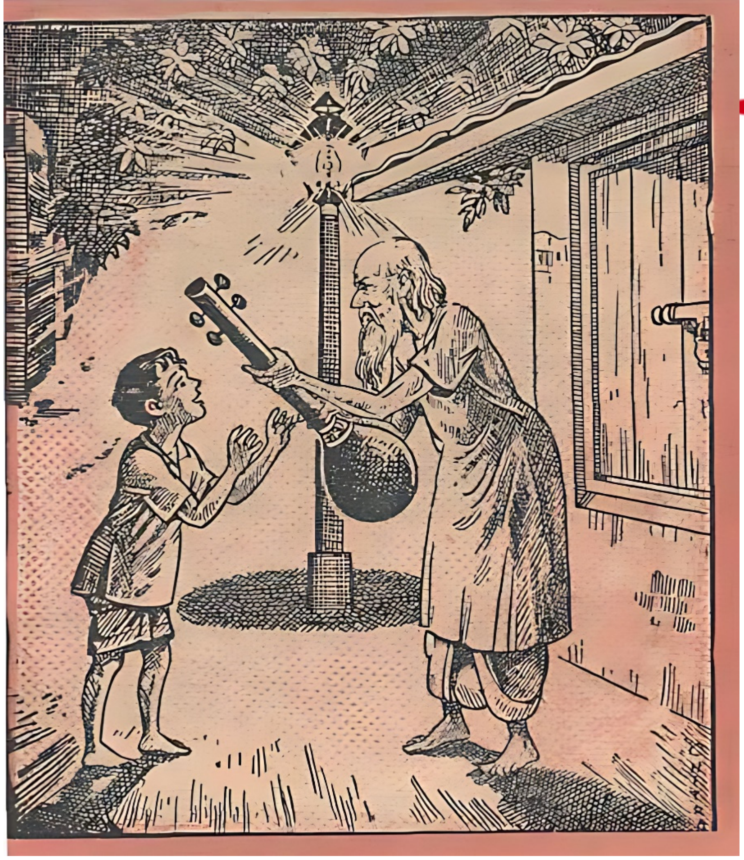

इसलिए उसकी उँगलियाँ छूते ही वह और भी मन लगा कर गाती। यहाँ तक कि उसकी तान सुन कर लड़के की आँखों से आँसू बहने लगते।

एक दिन उस लड़के की बरस-गाँठ आई। उस दिन जब लड़के ने जादूगर के पैर छुए तो उसने आशीर्वाद देकर कहा-"बेटा ! लो, यह वीणा तुम्हारी भेंट करता हूँ। अब तुम इसको ले लो और जो चाहो करो !" यह कह कर उसने वीणा बालक को दे दी। तब लड़के को अचरज हुआ और उसने पूछा-"क्या यह वीणा मेरी हो गई दादा ? क्या सचमुच तुमने इसे मुझे दे दिया ?"

"हाँ बेटा ! अब यह तुम्हारी है। तुम इससे जो चाहो कर सकते हो।" जादूगर ने जवाब दिया।

लड़के ने वीणा हाथ में ली और बजाना शुरू किया। तुरन्त उसे वीणा में से करुण-कण्ठ से सुनाई दिया-"लाला ! मुझे इस कैद से छुड़ा दो। मुझे फिर हरे-भरे जङ्गलों में जाने दो। यहाँ मेरा दम घुटा जा रहा है !" यह वीणा वाली देवी की आवाज़ थी।

तुरन्त लड़के ने वीणा बजाना बन्द कर दिया और उस जादूगर की तरफ मुड़ कर कहा -"दादा ! अगर सचमुच यह वीणा मेरी है तो मैं इस देवी को मुक्त कर सकता हूँ ? क्यों ?"

"तुम कैसे जानते हो कि उस वीणा में कोई देवी है ?" जादूगर ने पूछा !

"उसकी आवाज़ मुझे सुनाई देती है। इसके पहले भी मैंने उस वीणा की तान में उसका करुण स्वर कई बार सुना था। वह अभी मुझसे गिड़गिड़ा कर कह रही थी कि मुझे छोड़ दो। अब मैं उसका दुख देख कर बर्दाश्त नहीं कर सकता। अगर यह वीणा सचमुच मेरी है तो मैं उसे छोड़ देना चाहता हूँ।" लड़के ने जादूगर से कहा।

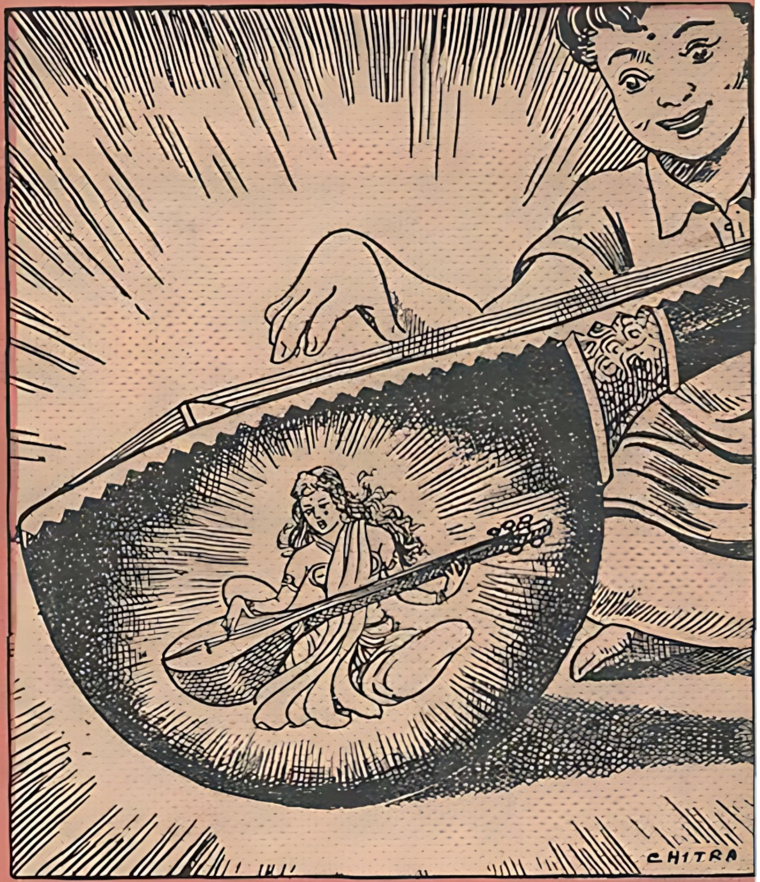

"लेकिन अगर वह छूट गई तो फिर तुम्हारे सङ्गीत को कोई पूछने वाला भी नहीं रहेगा। उसी के अन्दर रहने के कारण यह बीणा इतनी मधुर बजती है। इसी से तुम्हारा गान मीठा होता है और संसार तुम्हारे पैरों पर सर झुकाता है। यह सच है कि उसे छोड़ देने पर भी तुम वह वीणा बजा सकोगे और गा सकोगे। लेकिन तब तुम्हारे गाने में और राह चल कर भीख माँगते हुए गाने वाले भिखारियों के गाने में कोई अन्तर न रह जाएगा। समझ गए ! इस वीणा पर तुम्हारा भविष्य निर्भर है। बोलो ! क्या चाहते हो ? देवी को छोड़ कर भिखारी बनना चाहते हो या इस वीणा के ज़रिए धन, यश और शक्ति कमाना चाहते हो ?"जादूगर ने पूछा।

तब लड़के ने कहा-"दादा ! मैं तो इस देवी को छोड़ देना चाहता हूँ।" यह कह कर उसने वीणा ज़मीन पर पटक दी। तुरन्त वह टूक-टूक हो गई और उसमें से देवी बाहर आ खड़ी हो गई।

"बेटा ! तुम्हारा हृदय बहुत अच्छा है। तुमने मुझे मुक्त कर दिया है। इससे तुम्हारा बहुत नुकसान हुआ। लेकिन तुमने उसकी कोई परवाह नहीं की। अब मैं इस वीणा में नहीं रहूँगी और तुम पहले की तरह दिव्य-गान नहीं कर सकोगे। लेकिन मैं हमेशा तुम्हारे पास आकर गाने गाती रहूँगी। उन्हें तुम लिख लेना और संसार में प्रगट कर देना। इससे तुमको यश और धन मिलेगा।" इतना कह कर देवी अदृश्य हो गई।

तब जादूगर ने मुसकुराते हुए उस वीणा के टुकड़े बटोर कर, उन्हें फिर जोड़ कर पहले की तरह कर दिया और वीणा लड़के को देकर कहा-"बेटा ! मैं तुमसे बहुत खुश हूँ। लो, यह वीणा लो और सुख से जिओ !" इतना कह कर वह भी अन्तर्धान हो गया।

ग्यारह

पुराने जमाने की बात है। एक गाँव में एक मालदार गृहस्थ रहता था। उसे अतिथि- अभ्यागतों की खातिर करने में बड़ा आनन्द आता था। एक दिन एक परदेशी ब्राह्मण उसके घर आया। गृहस्थ को बहुत खुशी हुई। उसने उसको आसन पर बिठला कर पैर पखारने को गरम जल दिया और जल्दी जल्दी रसोई बनवाने लगा।

इधर रसोई बनी, उधर ब्राह्मण और गृहस्थ दोनों भोजन करने बैठे। गृहस्थ ने अत्यन्त विनय से कहा- "ब्राह्मण देवता! आप सङ्कोच न करें ! भर-पेट खाना खाएँ। इसे अपना ही घर समझें।" ब्राह्मण का सङ्कोच दूर करने के लिए गृहस्थ बोला।

ज्योंही गृहस्थ ने कहा कि-"इसे अपना ही घर समझें !" त्यों ही ब्राह्मण ने झारी में से थोड़ा जल दाहिने हाथ में ढाल लिया और अर्घ्य देते हुए बोला-"इदं गृहपत्या-ज्ञानुसारेण गृहदानम, श्री महा-विष्णु प्रीति कामय मानस्तुभ्य महं संप्रदेन ममनमम !"

दूसरे दिन वह ब्राह्मण, जो कल मेहमान बन कर आया था, उस घर की मरम्मत कराने के लिए कुछ राजगीरों को साथ लेकर आया। यह देख कर उस घर के मालिक गृहस्थ को बहुत अचरज हुआ। ब्राह्मण ने आते ही कहा कि-"कल आपने यह घर मुझे दान कर दिया था !" तब गृहस्थ घबराया और लगा दोनों में झगड़ा होने।

यह देख अड़ोसी पड़ोसी जमा हो गए। गृहस्थ ने कहा कि उसने वैसे ही बातों के सिलसिले में कह दिया था। लोगों ने किसी तरह ब्राह्मण को समझा-बुझा कर बिदा कर दिया। उस दिन से गृहस्थ हर बात सोच-समझकर कहने लगा।

बारह

लोग कहते हैं कि किसी गाँव में एक लालची आदमी रहता था। वह घी का कारोबार किया करता था। वह असली घी में अंट-शंट मिला कर बेचा करता था। कुछ दिन बाद उसका भेद खुल गया और वह पकड़ा गया। उस पर मुकदमा चला। जज ने मुकदमे का फैसला सुनाते हुए उससे कहा-"तुम्हारा जुर्म साबित हो गया है। तुम्हारी सजा यही है कि तुम या तो एक एक सेर अपनी दूकान का घी पी जाओ या एक सौ कोड़े खाओ। अगर दोनों तुम्हें मञ्जूर नहीं तो एक सौ रुपए का जुर्माना चुका दो! तीनों में तुम जो सजा चाहो, चुन लो।"

"ठीक तो है ?" उस लालची आदमी ने सोचा-"कोड़ों की मार कौन खाए और देखते-देखते एक सौ रुपए भी कौन पानी में बहा दे ? इसलिए मैं किसी तरह आँख मूँद कर एक सेर अपनी दूकान का घी पी जाऊँ तो वही सब से अच्छा होगा।" यह सोच कर उसने पहली शर्त मञ्जूर कर ली। तुरन्त जज ने एक सेर मिलावट वाला घी मँगाया।

उस आदमी के बहुत कोशिश करने पर भी घी गले से न उतरा। थोड़ा सा पीते ही मतली आने लगी। तब उसने कहा-"नहीं ! मैं कोड़ों की मार खाऊँगा।" लेकिन पचास कोड़े खाने के बाद उससे और बर्दाश्त न हुआ और वह चिल्लाने लगा-"नहीं ! मैं और कोड़े नहीं खा सकता। मैं जुर्माना ही चुका दूँगा।" यह कह कर उसने सौ रुपए लाकर दे दिए और किसी तरह जान बचा कर भाग गया।

देखा ! अपने लालच की वजह से उस आदमी को एक के बदले तीन सजाएँ भुगतनी पड़ीं। इसीलिए कहा जाता है कि लालच बुरी बला है।

सम्पाति नाम का राजा पुण्डरीक नगर पर राज्य करता था। उसकी रानी का नाम चन्द्रलेखा था। बहुत समय बीत गया; पर उनकी कोई सन्तान न हुई।

राजा ने जङ्गलों में जाकर घोर तप किया। आखिर ईश्वर प्रत्यक्ष हुए और उसे वर दिया-"जाओ ! तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।" वरदान लेकर राजा खुशी-खुशी घर लौट आया।

वरदान के अनुसार कुछ दिन बाद राजा के घर एक फूल सी लड़की पैदा हुई। उसका नाम रखा गया सुमन-लता। ज्योतिषियों ने आकर उसकी जन्म कुण्डली बनाई और कहा-"सब तो ठीक है, लेकिन इसमें एक दोष है।" "वह क्या है ?" राजा ने घबरा कर पूछा। "ब्याह के नवें दिन इसके पति पर प्राण-सङ्कट आएगा।" ज्योतिषियों ने जवाब दिया। यह सुन कर राजा और रानी के होश उड़ गए।

सुमन-लता जब सयानी हुई तो रानी बराबर उसके ब्याह की चर्चा उठाने लगी। तब राजा ने कहा-"रानी ! ज्योतिषी की बातें याद कर लो ! उसने कहा था कि ब्याह के नवें दिन बिटिया का सिन्दूर मिट जाएगा। इसलिए हम इसका ब्याह ही नहीं करेंगे। अब कभी इसके ब्याह की चर्चा न चलाना !"

एक बार राजकुमारी सुमन-लता अपनी सखियों के साथ वन में विहार करने गई। वहाँ एक सरोवर दीख पड़ा।

सखियाँ सरोवर में जल-क्रीडा करने लगीं। राजकुमारी किनारे-किनारे खड़ी तमाशा देख रही थी। इतने में एक बाज आकर सरोवर के किनारे एक झाड़ी में बैठ गया। राजकुमारी ने यह देख कर उसे पकड़ना चाहा।

सुनन्दा देवी

इतने में एक राजकुमार वहाँ आया। उसका नाम था रत्नसिंह। यह बाज उसी का था। उसी को खोजते हुए वह वहाँ आया था। वह राजकुमारी सुमन-लता को देखते ही उसकी सुन्दरता पर मुग्ध हो गया। बस, वैसे ही मुँह बाए ताकता खड़ा रह गया।

जब बड़ी देर हो गई और राजकुमार लौट कर नहीं गया तो उसका मित्र इन्द्रदत्त उसे खोजते वहाँ पहुँचा। वह दृश्य देखा तो सारी बात ताड़ गया। रत्नसिंह ने अपने मन का भेद उससे खोल दिया। उसने कहा-"दोस्त ! मैं सुमन-लता से ब्याह किए बिना नहीं रह सकता। नहीं तो मेरा जीना भी मुश्किल है।" "अच्छा, तुम यहाँ ठहरो! मैं पूछ-ताछ कर आता हूँ।" यह कह कर इन्द्रदत्त चला। राजकुमारी और उसकी सखियाँ उसे थोड़ी दूर पर बैठी दिखाई दीं।

नज़दीक जाने पर उसने देखा कि राज-कुमारी मूर्च्छित पड़ी हुई है। उसने सखियों से इसका कारण पूछा। उन्होंने बताया-"क्या कहें भैया ! सरोवर के किनारे इसने एक राजकुमार को देखा था। तब से उसी की रट लगाए बैठी है।"

इन्द्रदत्त ने कहा-"वाह ! तब तो मामला ठीक है। उधर राजकुमार भी इसकी याद में बेहाल हो रहा है। तुम लोग बिलकुल चिन्ता न करो। मैं दोनों की शादी का जिम्मा लेता हूँ।" यह कह कर वह लौट गया।

रत्नसिंह और इन्द्रदत्त अपने देश को वापस गए। वहाँ जाकर इन्द्रदत्त ने रत्नसिंह के पिता से सारा माजरों कह सुनाया और राजा सम्पाति के पास खबर भेजने को कहा।

राजा लालसिंह (रत्नसिंह के पिता) ने उसका कहना मान लिया और राजा सम्पाति के पास खबर भेजी। तब सम्पाति ने अपनी

लड़की की जन्म कुण्डली का रहस्य उन पर प्रगट किया और कहा कि ब्याह के नवें दिन वर की मृत्यु निश्चित है। तब राजा लालसिंह ने अपने पुत्र को इस सङ्कट के बारे में बताया और अपना मन बदलने को कहा। लेकिन रत्नसिंह अपने निश्चय पर दृढ़ रहा। आखिर लालसिंह को लाचार होकर उसकी बात माननी पड़ी। बड़ी धूम-धाम से शादी हो गई।

रत्नसिंह सुमनलता को लेकर अपने देश लौट आया। देखते देखते व्याह को आठ दिन हो गए। नवें दिन रात को राजकुमार रत्नसिंह सैर करके लौट रहा था। खूब अन्धेरा हो गया था। इतने में उसे ऐसा लगा जैसे कोई उसका नाम लेकर पुकार रहा है। जब राजकुमार ने उस ओर मुड़ कर देखा तो उसे एक विकराल आकृति दिखाई दी। सिर पर सींगें, लम्बी डाढ़े और हाँडी जैसा पेट ! वह एक ब्रह्मराक्षस था और उसी की तरफ आ रहा था।

"मुझे भूख लगी है। आ, तुझे निगल जाऊँ ?" वह राक्षस गरज कर बोला। तब रत्नसिंह को याद आया कि उसकी पत्नी की जन्म कुण्डली में क्या लिखा था ? "तो यही वह प्राण-सङ्कट है जिसके बारे में ज्योतिषियों ने भविष्य-वाणी की थी ? मैंने समझा था, वह सब फिजूल की बात है ! लेकिन नहीं, वह सच मालूम होता है।" उसने सोचा।

लेकिन वह डरा नहीं और उस राक्षस के सामने जा खड़ा होकर बोला- "मैं आ गया। तुम चाहो तो मुझे खाकर अपनी भूख मिटा सकते हो। आदमी को कभी न कभी मरना ही पड़ता है। फिर अगर मेरी काया तुम्हारी भूख मिटाने के काम आए तो कहना ही क्या? लेकिन हाँ, उसके लिए तैयार होकर नहीं आया था। अगर तुम

मुझे अभी निगल जाओगे तो मेरी पत्नी और उसके परिवार वालों को पता भी नहीं लगेगा कि मेरा क्या हाल हुआ। इसलिए मुझे एक घण्टे का समय दो। मैं उनसे विदा लेकर झट आ जाऊँगा। मुझ पर इतनी कृपा करो !" रत्नसिंह ने कहा।

राक्षस का दिल पत्थर की तरह कड़ा था। लेकिन ऐसी बातें सुन कर वह पिघल गया। उसे रत्नसिंह की बातें बहुत भली लगीं। फिर भी उसने उसकी परीक्षा लेने के लिए कहा- "लड़के ! बातें तो तुम्हारी सच्ची मालूम होती हैं। यह तो ठीक है। लेकिन एक बार घर जाकर लौट आना तुम्हारे वश की बात होगी क्या ? बहुत से लोग जल्दी-जल्दी वचन दे देते हैं। लेकिन ऐसे बहुत कम लोग हैं जो उनको पूरा कर सकते हैं।" तब रत्नसिंह ने कहा-"भैया ! तुम मुझ पर शक मत करो! मान लो कि मैं तुम्हें झूठा वचन देकर इस बार छूट गया। लेकिन क्या फिर कभी सामना नहीं होगा ? तब किस तरह छूट सकूँगा ?" तब राक्षस ने हँस कर कहा-"अच्छा ! तुम जाओ, पर पहले एक कसम खा लो ! कहो कि 'घर आए भिखारी को खाली हाथ

लौटा देने वाले को जो पाप लगता है वही मुझे भी लगे, यदि मैं राक्षस को वचन देकर मुकर जाऊँ !'

रत्नसिंह ने झटपट कसम खा ली। फिर जल्दी जल्दी चल कर घर पहुँचा और सारी बात आनी स्त्री और सास-ससुर से कह सुनाई। सब लोग उसको घेर कर रोने-धोने लगे कि 'हमें छोड़ कर कैसे जाओगे !' लेकिन रत्नसिंह ने कहा कि वह वचन देकर उसे तोड़ नहीं सकता।

सुमनलता ने सबकी तरह उसे नहीं रोका। वह बड़ी होशियार थी। इसलिए उसने रो-धो कर पति को निरुत्साहित नहीं किया। उसने कहा -"आप जाइए और सकुशल

लौट आइए । मेरा विश्वास है कि आपका बाल भी बाँका नहीं होगा।" उसकी बातें सुन कर सब को अचरज हुआ।

सुमनलता की बातें सुन कर रत्नसिंह को बहुत आनन्द हुआ। उसने सोचा कि उसके योग्य पत्नी है। वह भी वचन को उतना ही महत्व देती है जितना कि वह। उसे दुख सिर्फ इसी बात का था कि वह ऐसी पत्नी को फिर कभी नहीं देख सकेगा।

रत्नसिंह समय पर राक्षस के सामने हाजिर हो गया। "भैया ! मैं आ गया। लो, अब अपनी भूख मिटा लो !" उसने कहा। राक्षस ने झट उसे उठा लिया। वह उसे निगलना ही चाहता था कि इतने में उसे एक औरत की आवाज सुनाई दी-"भिक्षाम् देहि !" राक्षस ने उस तरफ मुड़ कर देखा वह भीख माँगने वाली और कोई नहीं; रत्नसिंह की स्त्री सुमनलता थी।

राक्षस ने उससे पूछा-"बेटी ! क्या भीख चाहती हो ?" "मैं अपने सुहाग की भीख माँगने आई हूँ।" राजकुमारी ने सिर झुका कर कहा। तुरन्त राक्षस वहाँ से अदृश्य हो गया और उसके बदले वहाँ एक गन्धर्व दिखाई दिया।

उसने रत्नसिंह से कहा-"ऐ राजकुमार ! तुम्हारा सङ्कट टल गया। तुम्हारी पत्नी का सुहाग अक्षय बना रहेगा। जाओ, वह तुम्हारे योग्य स्त्री है। उसने मेरी बातों के द्वारा जान लिया कि मैं घर आए मेहमान को कभी खाली हाथ लौटाता नहीं। उसने तुम्हारे प्राणों की भीख माँगी और पा ली। मैं एक गन्धर्व हूँ। शाप-वश राक्षस बना हुआ था। इस राजकुमारी को सुहाग की भीख देते ही मेरा शाप छूट गया। लो, मैं जाता हूँ। तुम दोनों सुख से रहो।"

यह कह कर वह गन्धर्व अदृश्य हो गया। रत्नसिंह और सुमनलता आनन्द से घर तुम लौट आए।

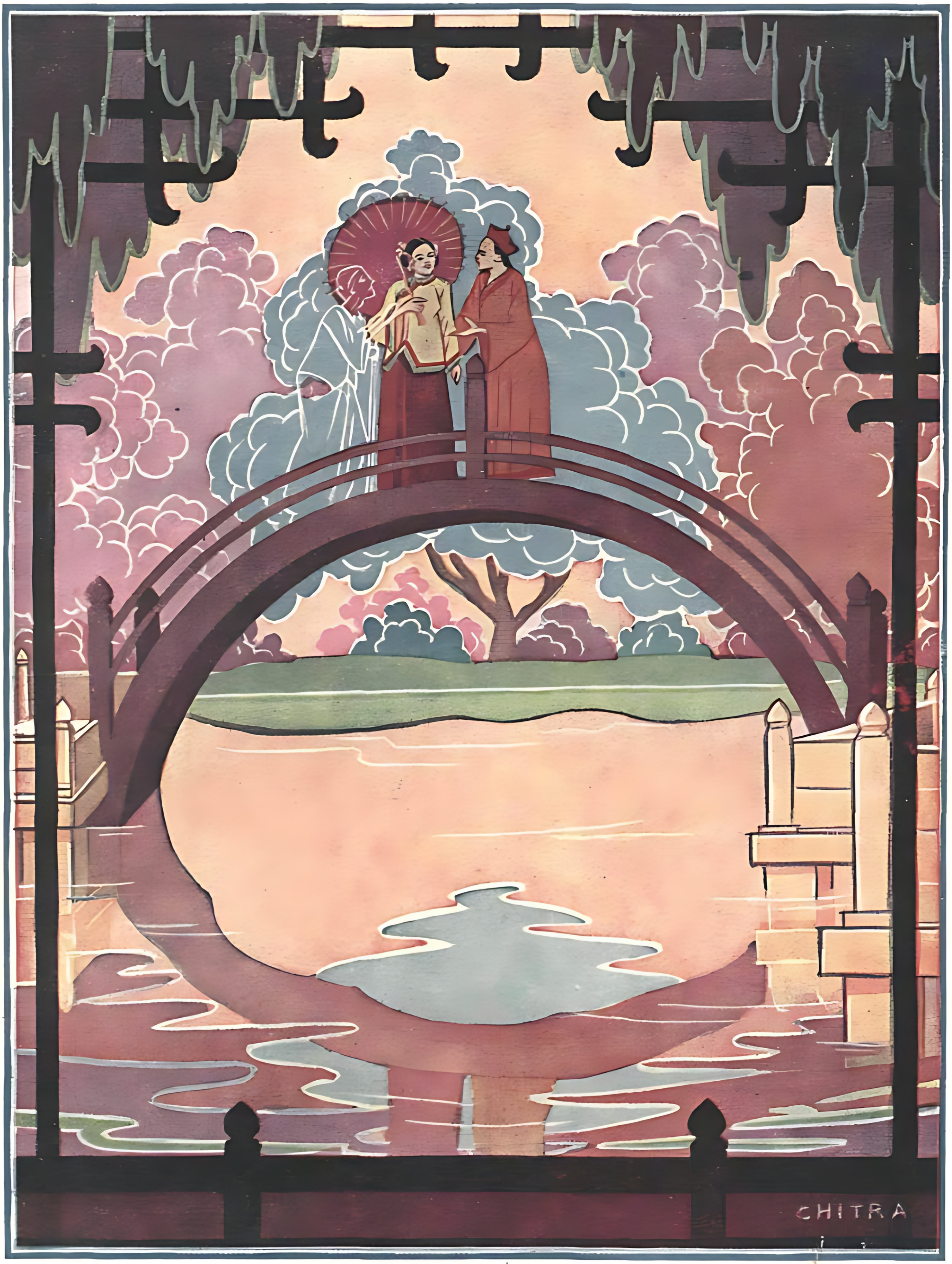

रङ्गीन चित्र - कथा चित्र — ३